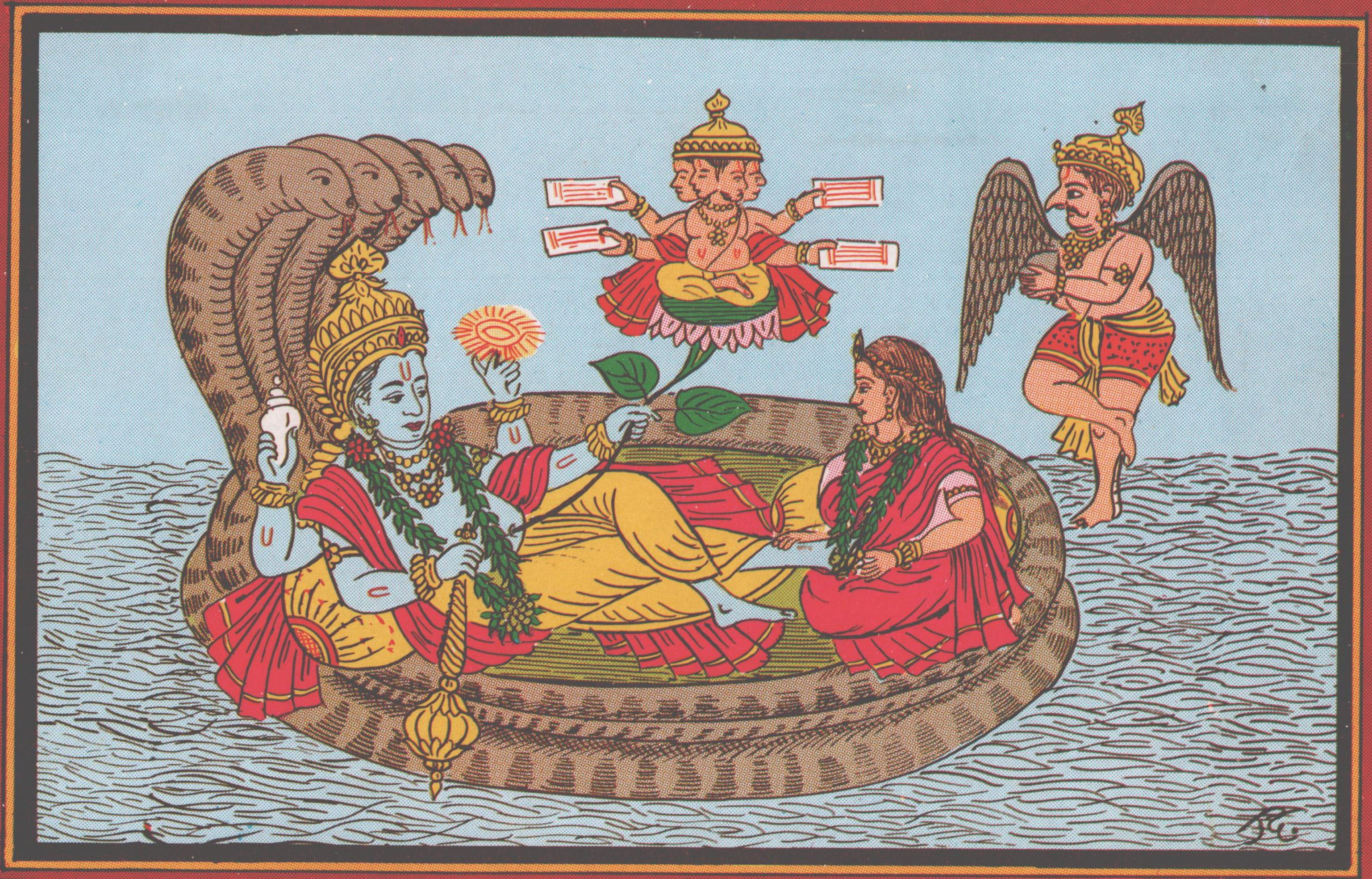
पद्मपुराणोक्तं कार्तिकमासमाहात्म्यं



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-४

HPD

अथ पद्मपुराणोक्तं कार्तिकमासमाहात्म्यं

हिन्दी टीका सहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Mumbai - 400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune - 411 013.

श्रीगणेशाय नमः ॥ सूत उवाच ॥ श्रियः पतिमथामंत्र्य गते देवर्षिसत्तमे । हर्षोत्फुल्लानना सत्या वासुदेवम-
थाब्रवीत् ॥१॥ सत्योवाच ॥ धन्यास्मि कृतकृत्यास्मि सफलं जीवितं मम । मज्जन्मनो निदाने च धन्यौ तौ
पितरौ मम ॥२॥ यो मां त्रैलोक्यसुभगां जनयामासतुर्ध्रुवम् । षोडशस्त्रीसहस्राणां वल्लभाऽहं यतस्तव ॥ ३ ॥
यस्मान्मयादिपुरुषः कल्पवृक्षसमन्वितः । यथोक्तविधिना सम्यङ्नारदाय समर्पितः ॥४॥ यद्वार्त्तामपि जानन्ति
भूमौ संस्था न जन्तवः । सोऽयं कल्पद्रुमो गेहे मम तिष्ठति सांप्रतम् ॥५॥ त्रैलोक्याधिपतेश्चाहं श्रीपतेरतिवल्लभा ।
अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि किंचित्त्वांमधुसूदन ॥ ६ ॥ यदि त्वं मत्प्रियकरः कथयस्वात्र विस्तरम् । श्रुत्वा तच्च
पुनश्चाहं करोमि हितमात्मनः ॥७॥ यथाकल्पं त्वया देव वियुक्ता स्यां न कर्हिचित् ॥८॥ सूत उवाच ॥ इ त
प्रियावचः श्रुत्वा स्मेरास्यः स बलानुजः ॥ सत्याकरं करे धृत्वाऽगमत्कल्पतरोस्तलम् ॥ निषिध्यानुचरं लोकं
सविलासः प्रियान्वितः ॥९॥ प्रहस्य सत्यामामंत्र्य प्रोवाच जगतां पतिः । तत्प्रीतिपरितोषोत्थलसत्पुल-
किताङ्गकः ॥ १० ॥

श्रीगणेशाय नमः ।। अथ भाषार्थबोधिनी टीका लिख्यते ।। श्लोकः—ध्यात्वा श्रीगुरुपादपद्ममनिशं नत्वा गिरां देवतां माहात्म्यं खलु कार्तिकस्य निखिलं देशीयया भाषया । भक्तानन्दकरं कथाऽमृतरसास्वादास्पदं श्रृण्वतां श्रीमत्केशवशर्मणाद्य विवृतं श्रीकृष्णभक्ति-प्रदम् ।। नैमिषारण्यक्षेत्रमें सूतजी अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि जब नारदजी भगवान्का दर्शन करके चले गये तब सत्यभामा प्रफुल्लितमुखं हो लक्ष्मीपति श्रीवासुदेव भगवान्से कहने लगीं ।।१।। सत्य भामा बोली कि;मैं धन्य हूं, मेरा जन्म सफल है, मेरे जन्मकेदेनेवाले माता पिता भी धन्य हैं जिन्होंने तीनों लोकोंमें सुंदर मुझको उत्पन्न किया जो मैं सोलह हजार स्त्रियोंमें आपकी प्यारी हूं ।।२।।३।। जिससे मैंने आदिपुरुष कल्पवृक्षसहित यथोक्तविधिसे नारद मुनिके लिए समर्पण किया ।। ४ ।। जिसकी वार्ताको भूमिमें स्थित जीव नहीं जानते हैं वह यह कल्पवृक्ष मेरे घरमें अब वर्तमान है ।।५।। त्रिलोकीके नाथ श्रीपति जो तुम हो तुम्हें मैं अति प्यारी हूं । हे मधुसूदन! इससे मैं आपसे कुछ प्रश्न करनेकी इच्छा करती हूं ।।६।। यदि आप मेरे हित करनेवाले हैं ? तो विस्तारसे कार्तिकमाहात्म्यको कहो, उसे सुनकर फिर मैं अपना हित करूंगी ।।७।। हे देव! प्रत्येक कल्पमें आपसे मेरा वियोग न हो ।।८।। सूतजी बोले कि, ऐसे प्यारीके वचन सुनकर श्रीकृष्णजी मुसुकराकर सत्यभामाका हाथ पकड़कर कल्पवृक्षके नीचे चले गये और सेवक लोगोंको निषेध करके विलासयुक्त प्रिया समेत बैठे ।।९।। उसके बाद जगत्पति श्रीकृष्णजी प्यारीकी प्रीतिसे उत्पन्न हुए आनंदसे पुलकित हो प्रियाको संबोधितकर मुसुकराकर बोले ।।१०।।

श्रीकृष्ण उवाच । न मे त्वत्तः प्रियतमा काचिदन्या नितंबिनी। षोडशस्त्रीसहस्राणां प्रिया प्राणसमा ह्यसि ॥११॥ त्वदर्थं देवराजोऽपि विरुद्धो देवतैस्सह।त्वया यत्प्रार्थितं कान्ते शृणु तच्च महाद्भुतम्॥१२॥ सूत उवाच॥एकदा भगवान्कृष्णस्सत्यायाः प्रियकार्यया । वैनतेयं समारूढ इन्द्रलोकं तदाऽगमत्॥१३॥ कल्पवृक्षं याचितवान्सोऽवदन्न ददाम्यहम् । वैनतेयस्तदा क्रुद्धस्तदर्थं युयुधे तदा ॥१४॥ गोलोके गरुडो गोभिर्युद्धं चैव चकार सः । गरुडस्य तु तुंडेन पुच्छकर्णास्तदाऽपतन् ॥१५॥ रुधिरश्च पपातोर्व्यां त्रीणि वस्तून्यतोऽभवन् ॥ कर्णेभ्यश्च तमालं च पुच्छाद्गोभी बभूव ह॥१६॥ रुधिरान्मेहँदी जाता मोक्षार्थी दूरतस्त्यजेत्।तस्मादेवत्रयं चैव नहि सेव्यं नरैः प्रिये ॥१७॥ गावस्ता गरुडं शृंगैः प्रजह्नुः कुपितास्तदा । गरुत्मतस्त्रयः पक्षाः पृथिव्यामपतन्प्रिये ॥१८॥ पक्षात्प्राथमिकाज्जातो नीलकण्ठः शुभात्मकः। द्वितीयाच्च मयूरो वै चक्रवाकस्तृतीयकः ॥१९॥ दर्शनाद्वै त्रयाणां तु शुभं फलमवाप्नुयात्। तस्मादिदमुपाख्यानं वर्णितं च मया प्रिये॥२०॥ सुपर्णदर्शनाच्चैव यत्फलं लभते नरः। तत्फलं प्राप्नुयात्तेषां दर्शनाद्वै ममालयम्॥२१॥ अदेयमपि वाऽकार्यमकथ्यमपि यत्पुनः। तत्करोमि कथं प्रश्नं कथयामि न मत्प्रिये ॥२२॥

श्रीकृष्णाजी बोले कि; हे प्यारी ! मुझे तुमसे अधिक कोई स्त्री प्यारी नहीं है, सोलह हजार स्त्रियोंमें तू ही प्राण के समान प्यारी है ।।११।। तेरे लिये देवताओं समेत इन्द्रने भी विरोध किया और तुमने जो याचना की वह महाद्भुत है, हे प्यारी ! मुझसे श्रवणकर ।।१२।। सूतजी बोले कि; एक समय भगवान् कृष्ण सत्यभामाका प्रिय करनेकी इच्छा से गरुड़पर चढ़े हुए इंद्रके लोकको गये।।१३।। वहां जाकर कल्पवृक्षको मांगा तब इंद्रने कहा कि मैं नहीं दूँगा तब गरुड़जी क्रोधित हो उस कल्पवृक्षके लिये युद्ध करने लगे ।।१४।। फिर गरुड़जी गोलोकमें गौओंसे युद्ध करने लगे, तब गरुड़की चोंचकी मारसे उनकी पूंछ और कान कटकर गिर पड़े ।।१५।। रुधिर भूमिमें गिरने लगा, इन तीनोंसे तीन वस्तु उत्पन्न हुईं अर्थात् कानसे तमाल, पूंछसे गोभी और रुधिरसे मेहँदी हुई ।।१६।। अतः मोक्षकी इच्छावाले पुरुष इनको दूरहीसे त्याग दें हे प्यारी ! इन तीनोंको मनुष्य कभी न सेवन करे ।।१७।। पीछे गायोंने भी गरुड़जीको सींगोंसे मारा । हे प्यारी ! तब गरुड़जीके तीन पंख धरतीमें गिर पड़े ।।१८।। उनमें पहिलेसे नीलकण्ठ उत्पन्न हुआ, दूसरेसे मोर और तीसरेसे चकवा-चकवी ।।१९।। इन तीनोंके दर्शनसे शुभ फल मिलते हैं, हे प्यारी ! अतः मैंने इस उपाख्यानका वर्णन किया है ।।२०।। जो फल गरुड़जीके दर्शनसे मिलता है वह इन तीनोंके दर्शनमात्रसे प्राप्त होता है और उसके बाद मेरा धाम मिलता है ।।२१।। हे प्यारी ! जो न देनेयोग्य न करने योग्य और न कहने योग्य वह सब मैं उत्तम बातें करूँगा और तुमसे कहता हूँ ।।२२।।

तत्पृच्छ सर्वं कथये यत्ते मनसि वर्तते ॥ सत्योवाच ॥ दानं व्रतं तपो वापि किं नु पूर्वं मया कृतम् ॥ २३ ॥ येनाहं मर्त्यजा मर्त्यभवानीताऽभवं किल । तवाङ्गार्द्धहरा नित्यं गरुडासनगामिनी ॥२४॥ इन्द्रादिदेवतावासमगमं या त्वया सह। अतस्त्वां प्रष्टुमिच्छामि किं कृतं तु मया शुभम् ॥२५॥ भवान्तरे च किंशीला का वाहं कस्य कन्यका॥ श्रीभगवानुवाच ॥ श्रृणुष्वैकमनाः कान्ते यत्कृतं पूर्वजन्मनि ॥२६॥ पुण्यव्रतं कृतवती तत्सर्वं कथयामि ते॥ यत्कर्म तु कृतं पूर्वं यस्य त्वं कन्यका प्रिये ॥२७॥ आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यां द्विजोत्तमः । आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २८ ॥ आतिथेयोऽग्निशुश्रूषी सौरव्रतपरायणः ॥ सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्य इवापरः ॥२९॥ तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता॥ अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥३०॥ तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी । तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्मा हरणार्थिनौ ॥ ३१ ॥ हिमाद्रिपादोपवने चेरतुस्ताविततस्ततः । तौ तस्मिन्राक्षसं घोरमायान्तं संप्रपश्यतः ॥३२॥ भयविह्वलसर्वांगावसमर्थौ पलायितुम् । निहतौ रक्षसा तेन कृतान्तसमरूपिणा ॥ ३३ ॥

जो तुम्हारे मनमें हो वह पूछो । सत्यभामा बोली कि, मैंने पूर्वजन्ममें दान, व्रत अथवा तप क्या किया है ? ॥२३॥ जिससे मैं मनुष्य जन्म लेकर इस लोकमें आई और आपकी अर्धांगिनी हो गरुड़की सवारीके योग्य हुई।॥२४॥ और आपके साथ इंद्र आदि देवताओंके लोकोंमें गई, इसलिए मैं आपसे पूँछती हूँ कि मैंने पूर्वमें क्या सुकृत किया है ? ॥२५॥ अगले जन्ममें मेरा कैसा स्वभाव है और किसकी पुत्री हूँ यह सब कहो । श्रीभगवान् बोले कि, हे प्यारी ! जो तुमने पूर्व जन्ममें किया है उसको मन लगाकर सुनो ॥२६॥ जो तुमने पुण्य व्रत और कर्म किये हैं और जिसकी तुम कन्या हो सब मैं तुमसे कहता हूँ ॥२७॥ कृतयुगके अन्तमें मायापुरी अर्थात् देववनमें वेदवेदांगका पढ़नेवाला अत्रिगोत्रमें उत्पन्न ब्राह्मणोंमें उत्तम देवशर्मा नामक ब्राह्मण हुआ ॥२८॥ अभ्यागतोंका सत्कार तथा अग्निहोत्र करनेवाला और सूर्यके व्रतमें तत्पर सदा सूर्यकी सेवा करता हुआ साक्षात् दूसरेके सूर्यके समान हुआ ॥ २९ ॥ उसके वृद्ध अवस्थामें गुणवती नाम कन्या उत्पन्न हुई, फिर उस पुत्रहीनने पुत्रीका विवाह अपने चन्द्रनाम शिष्यके साथ कर दिया ॥ ३० ॥ उसीको पुत्रके समान मानता था और वह भी ब्राह्मणको पिताके समान जानता था। वे दोनों कभी कुश और समिधा लेनेके निमित्त वन में गये ॥३१॥ हिमालय पर्वतके वनमें जहां-तहां विचरने लगे तब उन दोनोंने आता हुआ एक भयानक राक्षस देखा ॥ ३२ ॥ भयसे सब अंग व्याकुल हो गये और भागनेकी भी सामर्थ्य न रही तब यमराजके समान रूपवाले उस राक्षसद्वारा वे मारे गये ॥ ३३ ॥

तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । वैकुण्ठभवनं नीतौ मुद्गणैर्मत्समीपगैः ॥ ३४ ॥ यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् । तेनाहं कर्मणा ताभ्यां सुप्रीतो ह्यभवं किल ॥ ३५ ॥ शैवाः सौराश्च गाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः । मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षाम्भः सागरं यथा ॥३६॥ एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्रभ्रात्रादिनामभिः ॥३७॥ ततस्तु तौ मद्भवनाभिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ । मत्तुल्यरूपौ मम सन्निधानगौ दिव्याङ्गनाचन्दनभोगभोगिनौ ॥३८॥ इतिश्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्यासंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहताबुभौ ॥ पितृभर्तृजदुःखार्ता करुणं पर्यदेवयत् ॥१॥ गुणवत्युवाच॥ हा नाथ हा पितस्त्यक्त्वा गच्छथः क्व मया विना । बालाहं किं करोम्यद्य ह्यनाथा भवतोर्विना ॥२॥ को नु मामास्थितां गेहे भोजनाच्छादनादिभिः । अकिंचित्कुशलां स्नेहात्पालयेत्पतिदूषिताम् ॥३॥ हतभाग्या हतसुखा हताशा हतजीविता । शरणं कं व्रजाम्यद्य यो मे दुःखं प्रमार्जयेत् ॥ ४ ॥

ये दोनों उस क्षेत्रके प्रताप से और धर्मात्मा होनेसे मेरे समीपवासी मेरे गणोंसे वैकुंठलोकमें लाये गये ।। ३४ ।। उन दोनोंने जीतेजी सूर्यकी पूजा आदि की उससे मैं उन दोनोंपर अति प्रसन्न हुआ ।।३५।। शिव, सूर्य , गणेश, विष्णु, शक्ति अर्थात् देवी इन सब देवताओंके उपासक मुझको ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे वर्षाका जल समुद्रमें पहुँचता हैं।। ३६ ।। एक मैं क्रिया तथा नामसे पांच प्रकारका अर्थात् शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु और शक्तिरूपसे होता हूँ, जैसे देवदत्त एक पुत्र भ्राता आदि नामोंसे अनेक प्रकारका होता है ।। ३७ ।। उसके बाद वे दोनों मेरे भवन अर्थात् वैकुण्ठमें वास करनेवाले, विमानमें चलनेवाले और सूर्यके समान कांतिवाले मेरे समान रूपहो मेरे निकट स्थित हो दिव्य स्त्री और चन्दनके भोगोंके भोगनेवाले हुए ।। ३८ ।। इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां भाषार्थबोधिन्यांकार्तिकमाहात्म्यहिन्दीटीकायां प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।। श्रीकृष्णजी बोले-- उस पीछे गुणवती दोनोंको राक्षससे मारे गये सुनकर पिता तथा पतिसे उत्पन्न हुआ जो दुःख उससे पीडित हो शोकसे रोदन करने लगी ।।१।। गुणवती बोली कि, हाय स्वामी ! हाय पिता !! मुझको छोड़के मेरे विना कहां गये, अनाथ बाला मैं तुम्हारे विना अब क्या करूं ।। २ ।। घरमें बैठी हुई किसी काममें चतुर नहीं और पतिसे दूषित ऐसी मुझको स्नेहपूर्वक भोजन वस्त्र आदिसे मेरा कौन पालन करेगा ? ।।३।। भाग्य, सुख आशा और जीवन ये सब जिसके नष्ट हुये हैं ऐसी मैं किसकी शरण जाऊँ जो मेरे दुःखको दूर करे ।।४।। कहां, जाऊं, कहां ठहरूं और क्या करूं ? घृणापूर्वक हाय ! विधाता से

क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि किं करोमि यथाघृणम् ॥ विधात्रा हा हतास्म्यद्य कथं जीवामि बालिशा ॥ ५ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ॥ एवं बहुविलप्याथ कुररीव भृशातुरा । पपात भूमौ विकला रम्भा वातहता यथा ॥ ६ ॥
चिरादाश्वास्य सा भूमौ विलप्य करुणं बहु । निमग्ना शोकजलधौ दुःखार्ता समवर्तत ॥७॥ सा गृहोपास्करा-
न्सर्वान्विक्रीय शुभकर्म तत् । तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौक्यमतन्द्रिता ॥८॥ तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासं प्रभृति
जीविनी । विष्णुभक्तिरता शान्ता सत्यशौचा जितेन्द्रिया ॥ ९ ॥ व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् ।
एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्तिकस्य च ॥१०॥ एतद्व्रतद्वयं कान्ते ममातीव प्रियंकरम् । भुक्तिमुक्तिकरं
पुण्यम् पुत्रसम्पत्तिदायकम् ॥११॥ कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे । प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ता
महापातकिनोऽपि च ॥१२॥ स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम् । कार्तिके मासि कुर्वन्ति ते नरा विष्णु-
मूर्तयः ॥१३॥ संमार्जनं गृहे विष्णोः स्वस्तिकादिनिवेदनम् । विष्णोः पूजां च ये कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः
॥१४॥ इत्थं दिनत्रयमपि कार्तिके ये प्रकुर्वते । देवानामपि ते वंद्याः किं यैराजन्मतः कृतम् ॥ १५ ॥ इत्थं
गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत ॥ नित्यं विष्णोश्च पूजायां भक्त्या तत्परमानसा ॥ १६ ॥

मारी हुई बाला मैं कैसे जीऊँ !? ॥५॥ श्रीकृष्ण बोले—बहुत घबराई हुई वह ऐसे कुररीके समान बहुत विलाप करके पवनसे ताडित केलेके समान व्याकुल हो पृथ्वीमें गिर पड़ी ॥६॥ वह फिर बहुत देरमें श्वास ले शोकसे अत्यन्त रोदन कर शोकरूपी समुद्रमें डूबी हुई दुःखसे पीड़ित हुई ॥७॥ वह गुणवती घरकी सब सामग्री बेचकर उन दोनोंका परलोक संबंधी शुभकर्म शक्तिके अनुसार आलस्यरहित हो किया ॥ ८ ॥ अपने जीते जी शांत हो विष्णुभक्तिमें लगी हुई सत्य बोलनेवाली वह शौचयुक्त जितेंद्रिय हो उसी पुरमें वास करने लगी ॥९॥ उसने अच्छी प्रकार से (जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त दो व्रत भलीभांति किये— एक तो एकादशीका व्रत और दूसरा कार्त्तिक मासका सेवन ॥१०॥ श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे प्यारी ! ये दोनों व्रत मुझे बहुत ही प्यारे और मुक्ति अर्थात् भोग और मोक्षके देनेवाले और पुण्य तथा पुत्र और संपत्तिके देनेवाले हैं ॥११॥ जो कार्तिकके महीनेमें तुलाराशिके सूर्य होनेपर प्रातःकाल स्नान करेंगे वे बड़े पापी होने पर भी मोक्षको प्राप्त करेंगे ॥१२॥ जो मनुष्य कार्तिकके महीनेमें स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीके वनका पालन करते हैं वे मनुष्य विष्णुके स्वरूप हैं ॥ १३ ॥ विष्णुके मंदिरका झारना और (स्वस्तिक साथिया) आदिका अर्पण और विष्णुकी पूजा करते हैं वे जीते ही मुक्त हैं ॥१४॥ ऐसे तीन दिनभी जो कार्तिक में करते हैं वे देवताओंके भी नमस्कार करने योग्य हैं जिन्होंने जन्मभर किया उनका तो फिर क्या कहना है ॥ १५ ॥ ऐसे

कदाचिज्जरसा साऽथ कृशांगी ज्वरपीडिता । स्नातुं गंगां गता कान्ते कथंचिच्छनकैस्तदा ॥ १७ ॥ यावज्जलान्तरगता कंपिता शीतपीडिता । तावत्सा विह्वलाऽपश्यद्विमानं यान्तमम्बरात् ॥ १८ ॥ शंख चक्रगदापद्मैरायुधैरुपलक्षिताः । विष्णुरूपधरास्सम्यग्वैनतेयध्वजांकिते ॥ १९ ॥ आरोह्यन्विमाने तामप्सरोगणसेविताम् । चामरैर्वीज्यमानां तां वैकुण्ठमनयन् गणाः ॥२०॥ अथ सा तद्विमानस्था ज्वलदग्नि-शिखोपमा । कार्तिकव्रतपुण्येन मत्सांनिध्यं गताभवत् ॥ २१ ॥ अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम् । आगतोऽहं गणाः सर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥२२॥ एते हि यादवास्सर्वे मद्गणा एव भामिनि । पिता ते देव-शर्म्माऽभूत्सत्राजिदभिधो ह्यथ ॥ २३ ॥ यश्चन्द्रशर्मा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभे । कार्तिकस्नानपुण्येन बहु मे प्रीतिदायिनी ॥ २४ ॥ मद्द्वारि यत्त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता । तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतः शुभे ॥२५॥ कार्तिके दीपदानं च त्वया वै यत्कृतं पुरा । त्वद्देहगेहसंस्थेयं तस्माल्लक्ष्मीः स्थिराऽभवत् ॥२६॥ यच्च व्रतादिकं सर्वं विष्णवे भर्तृरूपिणे । निवेदितवती तस्मान्मम भार्यात्वमागता ॥ २७ ॥

गुणवती भी प्रत्येक वर्षमें व्रत करती हुई नित्य विष्णुकी पूजामें भक्तिसे तत्पर रहने लगी ॥ १६ ॥ हे प्यारी ! किसी समय बुढ़ापेसे दुर्बल वह गुणवती ज्वररोगसे पीड़ित हो कैसे हौलेहौले गंगास्नान के लिये गई ॥१७॥ जलके भीतर जातेही शीतसे कांपने लगी और पीड़ित हुई उसी समय उस व्याकुलाने आकाशसे उतरता हुआ विमान देखा ।१८॥ शंख चक्र गदा पद्म इन आयुधों से उपलक्षित विष्णुका रूप धारण करनेवाले गण, गरुड़की है मूर्ति जिसमें ऐसी ध्वजाका है चिह्न जिसमें, ऐसे विमानमें चढ़ाकर अप्सराओंके समूहसे सेवा की जाती हुई उस गुणवतीको चमर ढोरते हुए वैकुंठको ले गये ॥ १९ ॥ २० ॥ जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान विमानमें बैठी हुई वह गुणवती कार्तिकव्रतके पुण्यसे मेरे समीप आई ॥ २१ ॥ ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे जब मैं पृथ्वीमें आया तब वे सब गणभी मेरे साथ आये ॥२२॥ हे प्यारी! ये सब यादव मेरे गण ही हैं और तुम्हारे पिता देवशर्मा सत्राजित नामक यादव हैं ॥ २३ ॥ चन्द्रशर्मा जो पूर्वजन्ममें तुम्हारा पति था वह अक्रूर हुआ और तुम कार्तिकके स्नानके पुण्यको मेरी प्रीति बढ़ानेवाली वही गुणवती हो ॥२४॥ मेरे मंदिरके द्वारपर पहिले जो तुमने तुलसीकी बगीची लगाई थी, हे प्यारी कल्याणी ! उससे यह कल्पवृक्ष तुम्हारे आंगनमें स्थित है ॥२५॥ जो कार्तिकके महीनेमें पहले तुमने दीपदान किया था उससे तुम्हारी देहमें और घरमें स्थित लक्ष्मी स्थिर होकर वास करती है ॥२६॥ जो तुम सब व्रत आदि स्वामीरूप विष्णुको अर्पण करती थी उससे तुम मेरी स्त्री हुई ॥२७॥ जन्मसे लेकर मरणतक जो तुमने कार्तिकका

आजन्ममरणात्पूर्वं यत् कृतं कार्तिकव्रतम् । कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ॥ २८ ॥ एवं ये कार्तिके मासे नरा व्रतपरायणाः । मत्सान्निध्यं गतास्तेऽपि प्रीतिदा त्वं यथा मम ॥२९॥ यज्ञदानव्रत-तपःकारिणो मानवाश्च ये । कार्तिकव्रतपुण्यस्य नाप्नुवन्ति कलामपि ॥३०॥ सूत उवाच ॥ इत्थं निशम्य भुवनाधिपतेस्तदानीं प्राग्जन्मपुण्यभववैभव जातहर्षा । विश्वेश्वरं त्रिभुवनैकनिदानभूतं कृष्णं प्रणम्य वचनं निजगाद सत्या ॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ सत्यभामोवाच ॥ सर्वेऽपि कालावयवास्तव कालस्वरूपिणः । समानास्तु कथं नाथ मासानां कार्तिको वरः ॥ १ ॥ एकादशी तिथीनां च मासानां कार्तिकः प्रियः । कथं तदेव देवेश कारणं तत्र कथ्यताम् ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ साधुपृष्टं त्वया कान्ते शृणुष्वैकाग्रमानसा । पृथोर्वैन्यस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥ ३ ॥ एवमेव पुरा पृष्टो नारदः पृथुना प्रिये । उवाच कार्तिकाधिक्ये कारणं सर्वविन्मुनिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः । त्रिलोकीमथने शक्तो महाबलपराक्रमः ॥५॥ जित्वा देवांस्तिरस्कृत्य स्वर्लोकात्स महासुरः । इन्द्रादिलोकपालानामधिकारांस्तथाऽहरत ॥ ६ ॥

व्रत किया है, उससे मेरे बिछोहको कभी नहीं प्राप्त होगी ॥२८॥ ऐसे जो मनुष्य कार्तिकके महीनेमें व्रत करनेमें तत्पर होंगे वे मेरे समीप आकर तेरे समान प्रीति देनेवाले होंगे ॥२९॥ यज्ञ, दान, व्रत तथा तप करनेवाले मनुष्य कार्तिकव्रतकी एक कला अर्थात् षोडशवें भागको भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥३०॥ सूतजी बोले—भुवनाधिपति जो श्रीकृष्ण हैं उनसे इस प्रकार सुनकर पूर्व जन्ममें हुआ जो पुण्य है उसके वैभवसे हर्षित हुई सत्यभामा विश्वके स्वामी और तीनों लोकके कारणरूप श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके बोली ॥ ३१ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रमादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ सत्यभामा बोली—कालरूप जो आप हैं उनके संपूर्ण कालके अवयव अर्थात् भाग समान हैं तो हे नाथ ! कार्तिकका महीना सब महीनोंसे क्यों श्रेष्ठ है ? ॥१॥ हे महाराज ! दवताओंके स्वामी ! सब तिथियोंमें एकादशी और महीनोंमें कार्तिक आपको कैसे प्रिय हुआ इसका कारण कहिये ॥२॥ श्रीकृष्ण बोले हे प्यारी ! तैंने भला प्रश्न किया एकाग्रचित्त होके वेनके पुत्र पृथु और महर्षि नारदका संवाद सुन ॥३॥ ऐसे ही पहले पृथुराजसे पूछे गये सर्वज्ञ नारद मुनिने कार्तिकमासकी अधिकताका कारण वर्णन किया है ॥४॥ नारद बोले—पहले शंख नाम असुर समुद्रका पुत्र महाबली और तीनों लोकके मथनमें समर्थ हुआ ॥५॥ वह महासुर स्वर्गमें तिरस्कार सहित सब देवताओं को जीतकर इंद्रादिक लोकपालोंके अधिकारको छीन लिया ॥ ६ ॥

तद्भयात्कम्पिता देवाः सुवर्णाद्रिगुहांगताः। न्यवसन्बहुवर्षाणि सावरोधाः सबांधवाः ॥७॥ सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशा यदा। बद्धासना बभूवुस्ते तदा दैत्यो व्यचिन्तयत् ॥८॥ हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः। लक्ष्यते बलयुक्तास्ते कार्णीयं मयाऽत्र किम् ॥९॥ अद्य ज्ञातं मया देवा वेदमंत्र बलान्विताः। तान्हरिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवन्ति वै ॥१०॥ नारद उवाच ॥ इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम्। सत्यलोकाज्जहाराशु वेदानादिस्वयंभुवः ॥ ११ ॥ नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्तु निराक्रमन्। तोयानि विविशुर्यज्ञमंत्रा बीजसमन्विताः ॥१२॥ तान्मार्गमाणः शंखोऽपि समुद्रान्तर्गतोऽभ्रमत्। न ददर्श तदा दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान् ॥१३॥ अथ ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं विष्णुं शरण मन्वगात्। पूजोपहारमादाय वैकुण्ठ भवनं गतः ॥१४॥ तत्र तस्य प्रबोधाय गीतवाद्यादिकाः क्रियाः। चक्रुर्देवास्तदा गन्धधूपदीपान्मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ अथ प्रबुद्धो भगवांस्तद्भक्तिपरितोषितः। ददृशुस्ते सुरास्तस्य सहस्रार्कसमद्युतिम् ॥ १६ ॥ उपचारैः षोडशभिः संपूज्य त्रिदशास्तदा। दण्डवत्पतिता भूमौ तानुवाचाथ माधवः ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरदोऽहं सुरगणा गीतवाद्यादिमंगलैः। मनोऽभिलषितान्कामान्सर्वानेव ददामि वः ॥१८॥

उसके भयसे कांपते हुए देवता सुमेरुपर्वतकी गुफामें जाकर स्त्रियों और भाई-बंधुओं समेत बहुत वर्षोंतक वास करने लगे ॥ ७ ॥ जब देवता सुमेरु पर्वतकी गुफारूपी गोदमें स्थित हो आसन बांधकर बैठे तब दैत्य विचार करने लगा ॥ ८ ॥ छीन लिये गये हैं अधिकार जिनके ऐसे देवता यद्यपि मुझसे जीते गये तो भी बल से युक्त दिखाई देते हैं अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ ९ ॥ अब मैंने जाना कि देवता वेदमंत्रोंके बलसे युक्त हैं अतः मैं उनके वेदमंत्रोंको हर लूंगा तो वे सब बलहीन हो जायेंगे ॥ १० ॥ नारद बोले तब दैत्य ऐसे मानकर विष्णुको सोते हुए देखकर आदि स्वयंभू ब्रह्मा सत्यलोकसे वेदोंको शीघ्र हर लिया ॥ ११ ॥ उस दैत्यसे लिये गये वेद उसके भयसे निकले और यज्ञके मंत्र और बीज मंत्रोंसहित जलमें प्रवेश कर गये ॥ १२ ॥ उनको ढूंढ़ते हुए शंख नाम दैत्य भी समुद्रके भीतर जाकर भ्रमण करने लगा तब दैत्यने कहीं एक स्थानमें स्थित वेद न देखे ॥१३॥ इसके बाद ब्रह्मा सब देवताओंसहित पूजाकी सामग्री ले वैकुंठभवनमें जाकर विष्णुकी शरणमें गये ॥ १४ ॥ वहां सब देवता उनके जगानेके लिये गाने-बजाने आदि कामे करने लगे और वारंवार गंध धूप दीप आदि देने लगे ॥१५॥ इसके पीछे उनकी भक्तिसे प्रसन्न किये गये भगवान् जागे और वहां देवता हजार सूर्यके समान है कांति जिसकी ऐसे विष्णुको देखने लगे ॥१६॥ तब देवता षोडश उपचार अर्थात् धूप दीप नैवेद्य आदिसे पूजन कर पृथिवीमें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १७ ॥ विष्णु बोले—हे

इषस्य शुक्लैकादश्यां यावदुद्बोधिनी भवेत् । निशि तुर्यांशशेषायां गीतवाद्यादिमंगलम् ॥ १९ ॥ कुर्वन्ति नित्यंमनुजा ये भवद्भिर्यथा कृतम् । ते मत्प्रीतिकरा नित्यं मत्सानिध्यं व्रजन्ति हि ॥२०॥ पाद्यार्घ्याचमनायादि यद्भवद्भिरुपाहृतम् । तदनन्तगुणं यस्माज्जातं वः सुखकारणम् ॥ २१ ॥ वेदाः शंखाहृताः सर्वे तिष्ठंत्युदकसं-स्थिताः । तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम् ॥ २२ ॥ अद्यभृति वेदास्तु मंत्रबीजसमन्विताः । प्रत्यब्दं कार्तिके मासि विश्रमंत्यप्सु सर्वदा ॥ २३ ॥ मत्स्यरूपोऽहमपि च भवामि जलमध्यगः । भवन्तोऽपि मया सार्द्धमायान्तु समुनीश्वराः ॥ २४ ॥ लोकेऽस्मिन् ये प्रकुर्वंति प्रातःस्नानं नरोत्तमाः । ते सर्वय ज्ञावभृथे सुस्नाताः स्युर्न संशयः ॥२५॥ ये कार्तिकव्रतं सम्यक्कुर्वंति मनुजाः सदा । ते देहान्तेत्वया शक्र प्राप्या मद्भवनं सदा ॥२६॥ विघ्नेभ्यो रक्षणं तेषां सम्यक्कार्यं त्वया यम ॥ देया त्वया च वरुण पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ॥२७॥ धनवृद्धिर्धनाध्यक्ष त्वया कार्या ममाज्ञया । मम रूपधरः साक्षाज्जीवन्मुक्तो भवेद्यतः ॥२८॥ आजन्म मरणाद्येन कृतमेतद्व्रतोत्तमम् । यथोक्तविधिना सम्यक्स मान्यो भवतामपि ॥२९ ॥ एकादश्यां यतश्चाहं भवद्भिःप्रतिबो-धितः । अतश्चैषा तिथिर्मान्या सातीवप्रीतिदामम् ॥ ३० ॥

देवताओ ! वर देनेवाले मैं तुम्हारे गाने-बजाने आदि मंगलोंसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मनोवांछित सब कामोंको देता हूं ॥१८॥ क्वारकी शुक्ल पक्षकी एकादशीसे (हरि प्रबोधिनी) देवउठनी एकादशी तक पहरभर रात्रि रहेसे प्रातःकाल तक जो मनुष्य गाना-बजाना आदि मंगल नित्य तुम्हारे समान करते हैं वे प्रीतिके उपजानेवाले हैं और सदा मेरी समीपताको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ पाद्य अर्घ्य आचमनीय आदि जो तुमसे लाया उसके गुणोंका अंत नहीं है और वही तुम्हारे सुखका कारण होगा ॥२१॥ शंखासुरसे हरण किये गये सब वेद जलमें स्थित हैं उन्हें मैं शंखासुरको मारकर लाता हूँ ॥२२॥ आजसे लेकर प्रतिवर्ष मंत्र बीज समेत सब वेद कार्तिकके महीने भर सदा जलमें विश्राम लेते हैं ॥२३॥ जलके मध्यमें जानेवाला मैं भी मछलीका रूप धारण करता हूँ तुम सब भी मुनीश्वरोंसमेत मेरे साथ आगमन करो ॥ २४ ॥ इस लोकमें जो श्रेष्ठ मनुष्य प्रातःकाल स्नान करते हैं वे सब यज्ञांत स्नानके फलको निःसंदेह प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥ जो मनुष्य कार्तिकके महीने में भली भांति सदा व्रत करते हैं। हे इन्द्र ! वे देहांत समय तुमसे मेरे लोकमें पहुँचाने योग्य हैं ॥२६॥ हे यम ! तुमको उनकी विघ्नोंसे भली-भांति सदा रक्षा करनी चाहिये और हे वरुण तुमको उनको पुत्र पौत्र आदि संतति देनी चाहिये ॥ २७ ॥ धनाध्यक्ष अर्थात् कुबेर ! तुमको मेरी आज्ञासे उनके सदा धनकी वृद्धि करनी चाहिये इससे मेरे रूपको धारण करनेवाले साक्षात् जीवन्मुक्त होते हैं ॥२८॥ जिसने जन्मसे लेकर मरणतक कही हुई विधिके अनुसार भली-भांति यह उत्तम व्रत किया है वह तुम्हारे लिये भी मान्य है ॥ २९ ॥ जिससे तुमसे मैं एकादशीके दिन जगाया गया इससे मुझको अति प्रीति देनेवाली यह तिथि बहुतही मानने

व्रतद्वयं सम्यगिदं नरैः कृतं सान्निध्यकृन्मे न तथाऽन्यदस्ति । नान्यानि तीर्थानि तपांसि यज्ञाः स्वर्लोकदास्ते न यथा सुरोत्तमाः ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ नारद उवाच ।। इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्यरूपधृक् । ययौ तदाञ्जलौ विंध्यवासिनः कश्यपस्य सः ॥ १ ॥ स तं कमण्डलौ क्षिप्रं कृपया क्षिप्तवान्मुनिः । तावत्स न ममौ तत्र ततः कूपेऽप्यवेशयत ॥ २ ॥ तथापि न ममौ तावत्कासारे प्रापयत्सतम् । एवं स सागरे मत्स्यः क्षिप्तोऽसावभ्यवर्द्धत ॥ ३ ॥ ततोऽवधीत्सं तं शंखं विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् । अथ तं स्वकरे धृत्वा बदरीवनमभ्यगात् ॥४॥ तत्राहूय ऋषीन् सर्वानिदमाज्ञापयद्विभुः ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ जलान्तरे विशीर्णास्तु वेदास्तत्परिमार्गथ ॥ ५ ॥ आनयध्वं त्वरायुक्ताः सरहस्याञ्जलान्तरात् । तावत्प्रयागे तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥६॥ नारद उवाच ॥ ततस्तैः सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः । उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदा यज्ञसमन्विताः ॥७॥ तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावद्धि तस्य तत् । स स एव ऋषिर्जातस्तदाप्रभृति पार्थिव ॥८॥ अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः । विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्न्यवेदयन् ॥९॥

योग्य है ॥३०॥ जैसे भली-भांतिसे किये हुए दोनों व्रत मेरी समीपताको प्राप्त कराते हैं वैसे और नहीं । हे देवताओ ! अन्य तीर्थ तप यज्ञ स्वर्ग लोकके देनेवाले हैं वैकुंठके नहीं ॥ ३१ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायांभाषार्थबोधिनीसमाख्यायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद बोले, ऐसे कहकर मछलीके समान रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु उस समय विंध्याचलके वासी कश्यप मुनिके अंजलीमें आये ॥१॥ उन मुनीश्वरने उस मछलीको कृपा करके कमंडलुमें डाल ली, जब वह कमंडलुमें न समाई तब उसको कुएँमें डाल दिया ॥२॥ जब वह कुएँमें भी न समाई तब तालावमें पहुँचाई गई। ऐसे समुद्रमें डाला हुआ वह मत्स्य वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥३॥ उसके पीछे मत्स्यरूप धारण करनेवाले विष्णुने उस शंखासुरका बध किया और उसको अपने हाथमें धारण करके बदरीवनको चले गये ॥ ४ ॥ वहां सब ऋषियोंको बुलाकर प्रभु यह आज्ञा देते हैं। विष्णु बोले——भीतर वेद बिखर गये हैं उनको तुम ढूंढ़ो ॥ ५ ॥ बहुत शीघ्रतायुक्त हो रहस्यसमेत वेदोंको जलके मध्यसे लाओ, तबतक मैं देवताओंके समूहसमेत प्रयाग में ठहरा हूं ॥ ६ ॥ नारद बोले–तदनंतर तपोबलसे युक्त सब मुनीश्वरों द्वारा बीज और यज्ञमंत्रोंसहित सब वेद निकाले गये ॥ ७ ॥ उनमेंसे जितना जिसने पाया उतना उसके नामसे प्रसिद्ध हुआ, हे राजन् ! तबसे लेकर उस भागका वही ऋषि हुआ ॥८॥ इसके बाद सब मुनीश्वर मिलकर प्रयाग गये और पाये हुए वेदोंको

लब्ध्या वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः । अयजद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः ॥१०॥ यज्ञान्ते देवगन्धर्वयक्षपन्नगगुह्यकाः । निपत्य दण्डवद् भूमौ विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा ॥११॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणु नः प्रभो । हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव ॥ १२ ॥ स्थानेऽस्मिन् गृहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम् । यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ १३ ॥ स्थानमेतदतिश्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्द्धनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं चास्तु प्रसादाद्भवतस्सदा ॥१४॥ कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नादिविशुद्धिकृत् । दत्ताक्षयकरश्चास्तु वरमेवं ददस्व नः ॥१५॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ ममाप्येतन्मतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् । तथास्तु सुलभं त्वेतद् ब्रह्मक्षेत्रमितिप्रथम् ॥१६॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा गंगामत्रानयिष्यति । सा सूर्यकन्यया चात्र कालिंद्या योगमेष्यति ॥ १७ ॥ यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसन्तु मया सह । तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ १८ ॥ दानं तपो व्रतं होमो जपपूजादिकाः क्रियाः ॥ अनन्तफलदाः सन्तु मत्सान्निध्यकराः सदा ॥१९॥ ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मकृतान्यपि । दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यान्तु तत्क्षणात् ॥ २० ॥

विधाता सहित जो भगवान् हैं उनके लिये निवेदन करने लगे ।।९।। संपूर्ण वेदोंको पाकर ब्रह्मा आनंदयुक्त हो ऋषिगणों समेत अश्वमेध यज्ञ करने लगे ।।१०।। यज्ञके अन्तमें देवता, गंधर्व, यक्ष, सर्प और गुह्यक ये सब भूमिमें दण्डवत् प्रणाम कर शीघ्रही प्रार्थना करने लगे ।।११।। देवता बोले हे देवोंके देव जगत्के स्वामी प्रभु ! हमारी प्रार्थनाको सुनिये, हमारा यह आनंदका समय है, इसलिए आप वर देनेवाले हो ।। १२ ।। ब्रह्माने नष्ट हुए वेदोंको इस स्थानमें फिर पाया और हे भगवन् ! हम आपके प्रसादसे यज्ञके भाग पाये ।। १३ ।। हे महाराज ! अतः आपके प्रसादसे यह स्थान अर्थात् प्रयाग पृथ्वीमें अतिश्रेष्ठ पुण्यको बढ़ानेवाला और भुक्ति-मुक्तिको देनेवाला है ।।१४।। यह कालभी महापवित्र ब्रह्महत्या आदिको शुद्ध करने वाला और दियेको अक्षय करनेवाला हो यह वर हमको दीजिये ।।१५।। विष्णु बोले—हे देवताओ ! जो तुमने कहा यह मुझको भी सम्मत है तथास्तु अर्थात् मैंने तुमको वांछित वर दिया, ब्रह्मक्षेत्रनामसे प्रसिद्ध यह स्थान सबको सुलभ होगा ।।१६।। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहां गंगा लावेंगे वह गङ्गा यहां सूर्यकी कन्या कालिन्दी अर्थात् यमुनाजी से संयोगको प्राप्त होगी ।।१७।। यहां ब्रह्मादि तुम सब मेरे साथ वास करो यह तीर्थ तीर्थराज नामसे प्रसिद्ध होगा ।।१८।। इस क्षेत्रमें किया हुआ दान तप जप पूजा आदि क्रिया अनन्तफलकी देनेवाली और मेरी समीपताकी देने वाली होगी ।।१९।। अनेक जन्मोंके किये हुये ब्रह्महत्या आदि पाप इस तीर्थके दर्शनसे तत्काल नाशको प्राप्त होंगे ।।२०।। जो धीर पुरुष मेरी सन्निधि अर्थात् मेरे समीप देह छोड़ेंगे वे फिर जन्म नहीं लेनेवाले मनुष्य मेरे

देहत्यागं च ये धीराः कुर्वन्ति मम सन्निधौ । मत्तनुं प्रविशंत्यन्ते न पुनर्जन्मिनो नराः ॥ २१ ॥ पितॄनुद्दिश्य ते श्राद्धं कुर्वन्त्यत्र समागताः । तेषां पितृगणाः सर्वे यान्ति मत्समरूपताम् ॥ २२ ॥ कालोऽप्येष महापुण्यफलदस्तु सदा नृणाम् । सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनम् ॥ ॥ २३ ॥ मकरस्थे रवौ माघे प्रातःस्नानं प्रकुर्वताम् । दर्शनादेव पापानि यांति सूर्याद्यथा तमः ॥ २४ ॥ सलोकत्वं समीपत्वं सारूप्यं च त्रयं क्रमात् । नृणां ददाम्यहं स्नानैर्माघे मकरगे रवौ ॥२५॥ यूयं मुनीश्वरास्सर्वे शृणुध्वं वचनं मम । बदरीवनमध्येऽहं सदा तिष्ठामि सर्वगः ॥ २६ ॥ अन्यत्र यच्छतैर्वर्षैस्तपसा प्राप्यते फलम् ॥ तत्र तद्दिवसैकेन भवद्भिः प्राप्यते सदा ॥२७॥ स्थानस्य दर्शनं तस्य ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः । जीवन्मुक्ताः सदा तेषु पापं नैवावतिष्ठते ॥ ॥ २८ ॥ सूत उवाच ॥ एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवान्तर्द्धानमागात्सवेधाः । देवास्सर्वेऽप्यंशकैस्तत्र तिष्ठन्तोऽन्तर्द्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते ॥२९॥ इमां कथां यः शृणुयान्नरोत्तमो यः श्रावयेद्वापि विशुद्धचेताः। स तीर्थराजं बदरीवनं यद्गत्वा फलं तत्समवाप्नुयाच्च ॥३०॥ इति श्रीपद्मपु० कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ पृथुरुवाच ॥ महत्फलं त्वया प्रोक्तं मुने कार्तिकमाघयोः । तयोः स्नानविधिं सम्यङ्नियमानपि नो वद ॥१॥

शरीरमें प्रवेश करेंगे अर्थात् मुक्त हो जायेंगे ॥२१॥ जो यहां आकर पितरोंके निमित्त श्राद्ध करेंगे उनके सब पितृगण मेरी सरूपताको प्राप्त होंगे ॥२२॥ यह काल भी मनुष्योंके महापुण्यके फलको देने वाला होगा और मकरके सूर्य आनेपर स्नान करने वाले पुरुषोंके पापोंको नाश करेगा ॥२३॥ माघमासमें मकरके सूर्य आनेपर प्रातःकाल स्नान करनेवाले मनुष्योंके दर्शन से ही पाप ऐसे दूर होजायेंगे जैसे सूर्यसे अंधकार दूर हो जाता है ॥२४॥ माघमें मकरके सूर्य आने पर स्नान करनेवाले मनुष्योंको मैं सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य ये तीन प्रकारकी मुक्ति क्रमसे देता हूँ ॥२५॥ हे मुनीश्वरो ! तुम सब मेरा वचन सुनो सर्वव्यापी मैं बदरीवनके मध्य सदा रहता हूँ ॥२६॥ अन्य स्थानमें सौ वर्ष तप करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह तुम्हें वहां एक दिनमें सदा प्राप्त होगा ॥२७॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य उस स्थानका दर्शन करते हैं वे जीवन्मुक्त हैं और सदा उनमें पाप नहीं रहता है ॥२८॥ सूत बोले, देवोंके देव श्रीभगवान् ऐसे देवताओंसे कहकर ब्रह्मासमेत वहीं अंतर्धान् हो गये और इन्द्रादिक सब देवता भी अंशोंसे वहां स्थित होकर अंतर्धान हो गये ॥२९॥ जो उत्तम शुद्धचित्त हो इस कथाको सुनेगा या सुनायेगा वह तीर्थराज अर्थात् प्रयाग और बदरीवनमें जाकर जो फल मिलता है वह फल पावेगा ॥ ३० ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनय पण्डितकेशवप्रसादविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥ पृथु बोले हे मुनीश्वर महाराज तुमने कार्तिक और माघका बहुत बड़ा फल कहा, अब उन दोनोंके स्नानकी विधि और नियमोंको हमसे भली-भांति कहो ॥ १ ॥

उद्यापन विधिं चैव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ त्वं विष्णोरंशसम्भूतो नाज्ञातं विद्यते तव । तथापि वदतः सम्यङ्नियमानपि वै शृणु ॥ ॥३॥ आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्तिकस्य व्रतारम्भ तस्यां कुर्यादतन्द्रितः ॥४॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत्सर्वदा व्रती । प्रागुदीचीं व्रजेद्ग्रामाद्बहिः सोदकभाजनः ॥ ५ ॥ दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थंब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । अन्तर्द्धाय तृणैर्भूमिं शिरःप्रावृत्य वाससा ॥६॥ वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥ कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद्दक्षिणा मुखः ॥७॥ गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युक्षितैर्जलैः । गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥८॥ एका लिङ्गे गुदे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् । पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोस्सप्त मृत्तिकाः ॥९॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः । वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ यद्दिवा विहितं शौचं तदर्द्धं निशि कीर्तितम् ॥१०॥ तदर्द्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्द्धमध्वनि । शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाः क्रियाः ॥११॥ मुखशुद्धिविहीनस्य न मंत्राः फलदाः स्मृताः । दन्तजिह्वाविशुद्धिं च ततः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१२॥

उद्यापन विधि को यथावत् कहनेके योग्य हो ॥२॥ नारद बोले–हे राजन् ! तुम विष्णुके अंशसे उत्पन्न हो, तुमसे कुछ अज्ञात् नहीं है तो भी जो मैं कहता हूँ उन नियमोंको भलीभाँति सुनो ॥३॥ आश्विन महीनेमें जो शुक्लपक्षकी एकादशी होती है उस एकादशीसे कार्तिकव्रतका आरंभ आलस्यरहित होकर करे ॥४॥ चतुर्थांश अर्थात् प्रहररात्रि रहे से प्रतिदिन सदा उठे और प्रथम ग्रामसे उत्तर दिशाको जलका पात्र लेकर जाय ॥५॥ दिनमें सन्ध्याके समय कानपर यज्ञोपवीत स्थापित कर उत्तरको मुख करके भूमिमें तृण बिछावे और शिरको वस्त्रसे ढाँक ले ॥६॥ मुखको यत्नसे बांध कर थूकने और स्वास लेनेसे रहित हो। मूत्र तथा मलका त्याग रात्रिमें यदि करे तो दक्षिण दिशाकी और मुख करे ॥७॥ शिश्न इंद्रिय हाथमें ग्रहण किये हुयें उठकर मिट्टी लगाकर धोवे बास और लेपके दूर वाले शौचको आलस्यरहित होकर करे ॥८॥ लिंगमें एकबार मृत्तिका लगावे और तीन बार गुदामें फिर दोनोंमें दो बार लगावे, पांच बार गुदामें और दश दश बार एक-एक हाथमें फिर दोनों मिलाके सात बार मृत्तिका लगावे ॥९॥ यह गृहस्थका शौच है और इससे दूना ब्रह्मचारीको कहा है । वानप्रस्थको तिगुना और संन्यासियोंको चौगुना कहा है ॥१०॥ जो शौच दिनमें कहा है उसका आधा रातमें कहा उसका आधा रोगीको कहा है और रोगीका आधा मार्गमें कहा है। शौचकर्मसे रहित मनुष्यकी क्रिया निष्फल होती है ॥११॥ मुखशुद्धिसे रहित मनुष्यको मंत्र फलदायक नहीं होते हैं, उसके बाद दांतनकी और जीभकी शुद्धि भी यत्नसे करे ॥१२॥ दंतधावनके निमित्त वृक्षकी प्रार्थना—आयु, बल, यश,

आयुर्बलं यशो वर्च्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥ १३ ॥ इति मंत्रं समुच्चार्य द्वादशांगुलमानतः । समिधा क्षीरवृक्षस्य क्षयाहोपोषणं विना ॥ १४ ॥ प्रतिपद्दर्शनवमीषष्ठी चार्कदिने तथा । चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥१५॥ कण्टकीवृक्षकार्पासी निर्गुण्डीब्रह्मवृक्षकान् । वटैरण्डविगन्धाद्यान्वर्जयेद्दन्तधावने ॥१६॥ ततो विष्णोः शिवस्यापि गृहं गच्छेत् प्रसन्नधीः । पुष्पं गन्धान् सताम्बूलान्गृहीत्वा भक्ति तत्परः ॥१७॥ तत्र देवस्य पाद्यादीनुपचारान्पृथक् पृथक् । कृत्वा स्तुत्वा पुनर्नत्वा कुर्याद्गीतादिमङ्गलम् ॥१८॥ तालवेणुमृदङ्गादिध्वनियुक्तान्सनर्तकान् । पुष्पैर्गन्धैस्सताम्बूलैर्गायकानपि चार्चयेत् ॥१९॥ देवालये गानपरा यतस्ते विष्णुमूर्तयः । तपांसि यज्ञदानानि कृतादिषु जगद्गुरोः ॥ २० ॥ तुष्टिदानि कलौ यस्माद्भक्त्या गानं प्रशस्यते । क्व त्वं वससि देवेश मया पृष्टस्तु पार्थिव ॥२१॥ नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ २२ ॥ तेषां पूजादिकं गन्धपुष्पाद्यैः क्रियते नरैः । तेन प्रीतिं परां यामि न तथा मत्पूजनात् ॥ २३ ॥ मत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम् । निन्दन्ति ये नरा मूढास्ते मे द्वेष्या भवन्ति हि ॥ २४ ॥

तेज, संतति, द्रव्य, वेदपठन, बुद्धि हे वनस्पति ! तू हमको दे ।। १३ ।। इस मंत्रको पढ़कर बारहअगुल प्रमाण, गूलर आदि दूधके वृक्षकी दँतून लेकर दाँत शुद्ध करे, क्षयाह तथा व्रतके दिन न करे ।। १४ ।। पडवा, अमावस, नवमी, छठी, रविवार तथा चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें दंतधावन न करे ।।१५।। काँटोंका वृक्ष, कपास, सम्हालु, पीपल, बड, अरंड तथा दुर्गन्धयुक्त वृक्ष दंतधावनमें वर्जित हैं अर्थात् इनकी दँतून न करे ।। १६ ।। उसके बाद प्रसन्न मन हो पुष्प गंध तांबुल लेकर भक्तियुक्त हो विष्णु अथवा शिवके मंदिरमें गमन करे ।१७।।। वहां देवके पाद्यार्घ्य आदि उपचारोंको पृथक्-पृथक् करके और फिर स्तुति तथा नमस्कार करके गीत आदि मंगल करे ।। १८ ।। ताल, वेणु, मृदंग आदिकी ध्वनिसे युक्त नाचनेवालों समेत गवैयोंको फूल चन्दन पान आदिसे सत्कार करे ।।१९।। देवालयमें गानमें तत्पर होनेसे विष्णुका स्वरूप हैं, सतयुग आदिमें तप यज्ञ दान जगद्गुरु जो भगवान् हैं उन्हें प्रसन्न करते हैं ।।२०।। कलियुगमें नहीं अब कलियुगमें केवल गानहीकी प्रशंसा है, हे राजा ! मैंने भगवान्से पूछा कि, हे देवेश ! तुम कहां वास करते हो ? तब उन्होंने उत्तर दिया ।। २१ ।। हे नारद ! न तो मैं वैकुण्ठमें वसता हूँ और न योगियोंके मनमें, मेरे भक्त जहां गान करते हैं वहां मैं स्थित रहता हूँ ।। २२ ।। मेरे भक्तोंकी गंध पुष्प आदिसे जो पूजा मनुष्योंसे की जाय है उससे जैसा मैं प्रसन्न होता हूँ वैसा अपने पूजनसे नहीं ।।२३।। मेरे पुराणोंकी कथाको

शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः । अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाक्षतैः ॥२५॥ जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः । केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करस्तथा ॥२६॥ गणेशं तुलसीपत्रैर्न दुर्गां चैव दूर्वया । मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मी कामो न चार्चयेत् ॥२७॥ येभ्यो यानि प्रशस्तानि पूजायां सदैव तु । एवं पूजाविधिं कृत्वा देवदेवं क्षमापयेत् ॥ २८ ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२९॥ ततः प्रदक्षिणां कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च । पुनः क्षमाप्य देवेशं गायनाद्यं समापयेत् ॥३०॥ विष्णोः शिवस्यापि च पूजनं ये कुर्वन्ति सम्यङ्निशि कार्तिकस्य । निर्धूत पापाः सह पूर्वजैस्ते प्रयान्ति विष्णोर्भवनं मनुष्याः ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशयम् । तिलदर्भाक्षतैः पुष्पैर्गन्धाद्यैः सहितः शुचिः ॥ १ ॥ मानुषे देवखाते च नद्यामथ च सङ्गमे । क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥ २ ॥ विष्णुं स्मृत्वा ततः कुर्यात्संकल्पं सवनस्य तु । तीर्थादि देवताभ्यश्च क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥ ३ ॥

और मेरे भक्तोंका गाना सुनकर जो मूढमनुष्य निंदा करते हैं वे निश्चय ही मेरे द्वेषके योग्य होते हैं ॥ २४ ॥ सिरस, धतूरा कुरैया, सेमल, अकौआ, अमलतास इनके फूलोंसे तथा अक्षतोंसे विष्णु नहीं पूजने योग्य हैं अर्थात् इन सबोंको विष्णुकी मूर्तिपर न चढ़ावे ॥ २५ ॥ गुडहर कुंद सिरस जुही चमेली और केतकीके फूलोंसे शिवकी पूजा न करे ॥ २६ ॥ लक्ष्मीकी वांछा रखनेवाला मनुष्य तुलसीदलसे गणेशकी पूजा न करे और दूबसे दुर्गाकी पूजा न करे और अगस्त्यके फूलोंसे सूर्यकी पूजा न करे ॥२७॥ पूजामें जिन देवताओंके लिये जो सदा उत्तम है उससे इस प्रकार पूजा करके देवदेव जो भगवान् हैं उनसे क्षमा मांगे ॥२८॥ हे सुरेश्वर ! अर्थात् देवताओंके स्वामी ! मैंने मन्त्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन पूजन किया है हे देव, वह मेरा पूर्ण हो ॥२९॥ उसके बाद प्रदक्षिणा करके दंडवत् प्रणाम कर फिर भगवान्से क्षमापन करे, गाना आदि समाप्त करे ॥३०॥ जो मनुष्य कार्तिककी रात्रिमें विष्णुकी तथा शिवकी भलीभाँति पूजा करेंगे वे मनुष्य अपने पुरुषोंसमेत पापरहित हो वैकुंठ भवनको जायेंगे ॥३१॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिन्याख्यायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ नारद बोले दो घड़ी रात रहे तिल कुश अक्षत चंदन आदि लेकर शुद्ध हो जलाशय अर्थात् नदी तडाग आदिके समीप स्नानके लिये जाय ॥१॥ मनुष्यरचित और देवरचित नदीमें अथवा संगममें स्नानका क्रमसे दशगुण फल है और तीर्थमें उससे दुगुना फल कहा है ॥२॥ विष्णुका स्मरण करके फिर स्नानका संकल्प करे, फिर तीर्थ आदिकोंको और देवताओंको

अर्घ्यमन्त्रः-नमः कमलनाभाय नमस्ते जल शायिने। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ वैकुण्ठे च प्रयागे च तथा बदरिकाश्रमे। यतो विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा च निदधे पदम् ॥५॥ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। तैरेव सहितस्सम्यङ्मुनिवेदमखान्वितैः ॥ ६ ॥ कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर यथाविधि ॥७॥ ध्यात्वा नत्वा च देवेशं जलेऽस्मिन् स्नातुमुद्यतः। तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥८॥ अर्घ्यमंत्रः—व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ ९ ॥ नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने। गृहाणार्घ्यं मयादत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ ॥१०॥ स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत्। नाभिमात्रे जले तिष्ठन् व्रती स्नायाद्यथाविधि ॥ ११ ॥ तिलामलकचूर्णेन गृहीस्नानं समाचरेत्। विधवास्त्रीयती नान्तु तुलसीमूलमृत्स्नया ॥ १२ ॥ सप्तमीदर्शनवमीद्वितीयादशमीषु च। त्रयोदश्यां न च स्नायाद्धात्रीफलतिलैः सह ॥१३॥ आदौ कुर्यान्मलस्नानं मंत्रस्नानं ततः परम्। स्त्रीशूद्राणां न वेदोक्तैर्मंत्रैस्तेषां पुराणजैः ॥ १४ ॥

क्रमसे अर्घ्यआदिका दान करे ॥३॥ अर्घ्यमंत्र— कमलनाभ जो भगवान हैं उनको नमस्कार है और जलशायी जो भगवान् हैं उनको नमस्कार है। हे हृषीकेश! तुमको नमस्कार है, मेरे अर्घ्यको ग्रहण करो तुमको नमस्कार है ॥४॥ वैकुण्ठमें, प्रयागमें और बदरिकाश्रममें जहां विष्णु गये और तीन प्रकारसे पद स्थापित किया ॥५॥ इससे मुनि, वेद और यज्ञ इनसे सेवित जहां विष्णुने तीन प्रकारसे स्थान किया वहां देवता मरी रक्षा करें ॥६॥ हे जनार्दन! हे देवदेवेश! हे दामोदर! मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये कार्तिकमें विधिपूर्वक प्रातःकाल स्नान करूँगा ॥ ७ ॥ देवेश भगवान का ध्यान और नमस्कार करके इस जलमें स्नान करनेको उद्यत हूँ। हे दामोदर! तुम्हारे प्रसादसे मेरे पाप नष्ट हों ॥८॥ अर्घ्यमंत्र—हे हरि! कार्तिकमहीनेमें विधिपूर्वक नहाया हुआ जो मैं व्रती हूँ उससे दिये हुए अर्घ्यको राधा सहित ग्रहण कीजिये ॥९॥ हे दनुजेन्द्रनिषूदन! अर्थात् हिरण्यकशिपुके बंध करनेवाले! पापके नाश करनेवाले कार्त्तिकके महीनेमें नित्य तथा नैमित्तिक कर्ममें मुझसे दिये गये अर्घ्यको ग्रहण कीजिये ॥१०॥ व्रती पुरुष गंगा, विष्णु, शिव तथा सूर्यको स्मरण करके जलमें प्रवेश करे। नाभि पर्यन्त जलमें स्थित हो विधिपूर्वक स्नान करे ॥११॥गृहस्थ तिल और आमलोंका चूर्ण लगाकर स्नान करे और विधवा स्त्री तथा संन्यासियोंको तुलसीके जडकी मिट्टी लगाकर स्नान करना चाहिये ॥१२॥ सप्तमी, अमावस, नवमी, दूज, दशमी और तेरस इन तिथियोंमें आमले और तिल से स्नान न करे ॥१३॥ पहले मलका स्नान करे उसके बाद मंत्रोंसे स्नान करे। स्त्री और शूद्रोंको वेदोक्तमंत्रोंसे

स्नानमंत्रः-त्रिधाऽभूद्देवकार्यार्थं यः पुरा भक्तभावनः।स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयाऽत्र माम्॥ १५॥ विष्णोरा-ज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारकान्। रक्ष देवास्ते सर्वे मां पुनन्तु सवासवाः ॥१६॥ वेदमंत्राः सबीजाश्च सरहस्या मखान्विताः। कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदेवताः ॥१७॥ गंगाद्यास्सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः। ससप्तसागराः सर्वे मां पुनंतु जलाशयाः ॥१८॥ पतिव्रतास्त्वदित्याद्या यक्षास्सिद्धाः सपन्नगा। ओषध्यः पर्व-ताश्चापि मां पुनन्तु त्रिलोकजाः ॥१९॥ एभिर्मंत्रैर्व्रती स्नात्वा हस्तन्यस्तपवित्रकः। देवर्षीन्मानवान्पितॄंस्तर्प-येच्च यथाविधि ॥२०॥ यावन्तः कार्तिके मासि वर्तन्ते पितृतर्पणे। तिलास्तत्संख्यकाब्दानि पितरः स्वर्गवा-सिनः ॥२१॥ ततो जलाद्विनिष्क्रम्य शुचिवस्त्रावृतोव्रती। प्रातः कालोदितं कर्म समाप्यार्चेद्धरिं पुनः ॥२२॥ तीर्थानि देवान् संस्मृत्य पुनर्घ्यं प्रदापयेत्। गंधपुष्पफलैर्युक्तं भक्त्या तत्परमानसः ॥ २३ ॥ अर्घ्यमंत्रः-व्रतिनःकार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ २४ ॥ ततश्च ब्राह्मणान्भक्त्या पूजयेद्वेदपारगान्। गन्धैः पुष्पैः सतांबूलैः प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ २५ ॥

स्नान करके पुराणके मंत्रोंसे स्नान करना चाहिये ॥१४॥ स्नानके मंत्र-जो भक्तोंको आनंद देनेवाले भगवान् देवताओंके कार्यके निमित्त रूप धारण करते हैं सब पापोंके नाश करनेवाले वे भगवान् कृपा करके मुझको पवित्र करें ॥१५॥ विष्णुकी आज्ञा पाकर कार्तिकव्रत करनेवालोंकी जो देवता रक्षा करते हैं। वे सब देवता इंद्रसहित मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ बीज रहस्य और यज्ञ सहित वेदमंत्र और देवताओंसमेत कश्यप आदि मुनि मुझे पवित्र करें ॥१७॥ गंगा आदिक सब नदी, तीर्थ और जलके देनेवाले नद, सातों समुद्रोंसमेत सब जलाशय मुझको पवित्र करें ॥ १८ ॥ अदिति आदि पतिव्रता, यक्ष, सिद्ध, सर्प और तीनों लोककी औषधी और पर्वत मेरी रक्षा करें ॥१९॥ व्रती मनुष्य इन मंत्रोंसे स्नान करके हाथमें पवित्री धारण करके देव ऋषि मनुष्य पितृ इन सबको विधिपूर्वक तर्पण करे ॥ २० ॥ कार्तिकमासमें पितरोंके तर्पणमें जितने तिल होते हैं उतनेही वर्ष तक पितर स्वर्गमें वास करते हैं ॥ २१ ॥ उसके बाद व्रती मनुष्य जलसे बाहर निकलकर शुद्ध वस्त्र धारण कर प्रातः कालमें कहे हुये कर्मोंको समाप्त कर फिर हरिका पूजन करें ॥२२॥ तीर्थोंको और देवताओंको स्मरण करके भक्तिमें तत्पर मन हो चन्दन फूलोंसे युक्त अर्घ्यदान करे ॥ २३ ॥ अर्घ्यमंत्रः-व्रती और कार्तिकमासमें विधिपूर्वक नहाया हुआ जो मैं हूँ, मेरे द्वारा दिये हुए अर्घ्यको हे हरि! राधा सहित तुम ग्रहण करो ॥२४॥ उसके बाद चन्दन फूल तथा पानोंसे वेदपाठी ब्राह्मणोंकी पूजा करे और वारंवार

तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदास्तन्मुखमाश्रिताः । सर्वांगेष्वाश्रिता देवाः पूजितोऽस्मि तदर्चया ॥२६॥ अव्यक्तरू-पिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि । नावमान्या नो विरोध्याः कदापि शुभमिच्छता ॥२७॥ ततो हरिप्रियां देवीं तुलसीमर्चयेद्व्रती । प्रदक्षिणां नमस्कारान्कुर्यादेकाग्रमानसः ॥ २८ ॥ देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः । नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ॥ २९ ॥ ततो हरिकथां श्रुत्वा पौराणीं स्थिरमानसः । पुनस्तान्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेद्भक्तिमान् व्रती ॥३०॥ एवं सर्वविधिं सम्यक्पूर्वोक्तं भक्तिमान्नरः । करोति यः स लभते नारायणसलोकताम् ॥३१॥ रोगापहं पातकनाशकृत परं सुबुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम् । मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति शोभनम् ॥३२॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः॥६॥ नारद उवाच ॥ कार्तिकव्रतिनां पुंसां नियमा ये प्रकीर्तिताः । तान्शृणुष्व महाराज कथ्यमानान्समासतः ॥१॥ सर्वामिषाणि मांसं च क्षौद्रं सौवीरकं तथा । राजिकोन्मादकं चापि नैवाद्यात्कार्तिकव्रती ॥२॥ परान्नं च परद्रोहं परदेशगमं तथा । तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥३॥ देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा । स्त्रीराज-महतां निन्दां वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ४ ॥

नमस्कार करे ॥२५॥ ब्राह्मणोंके दहिने चरणमें तीर्थ वास करते हैं और वेद उनके मुखमें स्थित हैं और सब अंगोंमें देवता रहते हैं इस कारण उनकी पूजा करनेसे मैं पूजित होता हूँ ॥ २६ ॥ पृथ्वीमें ब्राह्मण अव्यक्त रूप विष्णुके स्वरूप हैं इस कारणसे कल्याण चाहनेवाले पुरुष से वे अपमान करने योग्य नहीं हैं और न कदापि विरोध करने योग्य हैं ॥२७॥ देवताओंसे तू पहिले निर्मित की गई और मुनीश्वरोंसे पूजी गई है, हे तुलसी ! तुमको वारवार नमस्कार है । हे हरिकी प्यारी ! मेरे पापको दूर करो ॥ २८ ॥ २९ ॥ उसके बाद स्थिर मन हो पुराण संबंधिनी हरिकी कथाको सुन भक्तियुक्त व्रती मनुष्य फिर उन ब्राह्मणोंका पूजन करे ॥३०॥ ऐसे पहिले कही हुई सब विधिको जो भक्तिमान् मनुष्य भलीभांति करता है वह विष्णुकी सलोकताको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ रोगोंको दूर करनेवाला और पापोंका नाशक उत्तम बुद्धिको देनेवाला और पुत्र धन आदिका साधक तथा मुक्तिका कारणरूप ऐसे हरिका प्यारा जो कार्तिक व्रत है उसको छोड़कर दूसरा और नहीं है ॥ ३२॥ इति श्रीमत्पंडित परमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्म–द्विवेदिविरचितायांकार्तिकमाहात्म्य टीकायां भाषार्थबोधिनी–समाख्यायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नारद बोले – हे महाराज ! कार्तिकके व्रत करनेवाले पुरुषोंके जो नियम हैं उनको संक्षेप से सुनो ॥ १ ॥ सब प्रकारके भोग्य वस्तु मांस, सहत, राई और उन्मादक वस्तु इन सबको कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्य न खायें ॥ २ ॥ पराया अन्न, दूसरेसे द्रोह करना, तीर्थ के अतिरिक्त परदेश जाना इन सबोंको कार्तिव्रतकरनेवाला सदा छोड़ दे ॥ ३ ॥-देवता,

द्विदलं च तिलं तैलं पक्वान्नं मूल्यदूषितम् । भावदुष्टं शब्ददुष्टं वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥५॥ प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फलं जंबीरमामिषम् । धान्येमसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥६॥ अजागोमहिषीक्षीरादन्यदुग्धाद्यमामिषम् । द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥७॥ ताम्रस्थितं पंचगव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् । आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्यमधः शय्यां पत्रावल्यांच भोजनम् । चतुर्थयामभुंजानः कुर्यादेवं सदा व्रती ॥९॥ नकरस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत् । अन्यत्र कार्तिकस्नायी तैलाभ्यंगं विवर्जयेत् ॥१०॥ अलाबुं चापि वृन्ताकं कूष्माडं बृहतीफलम् । कलिंगं च कपित्थं च वर्जयेद्वैष्णवो व्रती ॥११॥ रजस्वलां त्यजेन्म्लेच्छपतितव्रैतकैस्तथा । द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेत्कार्तिकव्रती ॥१२॥ एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत् । द्विः पाचितं च दग्धान्नं नैवाद्यात्कार्तिकव्रती ॥१३॥ एतानि वर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वव्रतेष्वपि.। कृच्छ्रादींश्च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या विष्णुतुष्टये ॥१४॥ क्रमात्कूष्माण्डबृहतीं तरुणीं मूलकं तथा । श्रीफलं च कलिंगं च फलं धात्रीभवं तथा ॥ १५ ॥

वेद, ब्राह्मण, गुरु, गो व्रती, स्त्री और राजा तथा बड़ोंकी निन्दा कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्य छोड़ दें ।। ४ ।। द्विदल कहिये चणा, मटर आदि तिलका तेल मोल लिया हुआ पक्वान्न भावसे दूषित तथा शब्दसे दूषित इन सबोंको कार्तिक व्रत करनेवाला वर्जित करे ।। ५ ।। प्राणीके अंगका मांस चूना, जंभीरीका फल और अन्नोंमें मसूर को मांसके समान कहे हैं और बुसा हुआ अन्न इन सबको कार्तिकव्रतवाला न खाय ।। ६ ।। बकरी, गौ, भैंसके दूधसे भिन्न दूध आदि ब्राह्मणके बेचे हुए सब रस और भूमिमें उत्पन्न नमक इन सबोंको कार्तिकका व्रती छोड़ दे, क्योंकि ये भी मांसके तुल्य हैं ।।७।। तांबेके पात्रमें रखा हुआ पंचगव्य और छोटी तलैयामें भरा हुआ जल और अपने लिये सिद्ध किया हुआ अन्न पंडितोंने मांसके समान कहा है ।। ८ ।। ब्रह्मचर्य रखना, भूमिपर सोना, पत्रावलीमें भोजन, चौथे प्रहर का भोजन कार्तिकव्रती सदा करे ।। ९ ।। कार्तिकस्नान करनेवाला नरकचतुर्दशीको तेल लगाना वर्जित करे ।।१०।। लौकी, बैंगन, धुला,कुम्हड़ा बृहत्ती, फल, कलीन्दा, कैथके फलको कार्तिकव्रत करनेवाला त्याग करे ।। ११ ।। रजस्वला स्त्रीका त्याग करे और म्लेच्छ पतित करनेवाले तथा ब्राह्मणोंके द्वेषी और वेदसे बाहर चलनेवाले उन सबोंसे कार्तिकव्रत करनेवाला बात न करे ।। १२ ।। इन पूर्व श्लोकोंमें कहे हुये, कागोंसे देखे हुये, अन्नको तथा सूतकके अन्नको और दो बार पकाये हुये अन्नको और जले हुएको कार्तिक व्रत करनेवाला न खाये ।।१३।। इन वर्जित पदार्थोंको व्रत करनेवाला सब व्रतोंमें सदा वर्जित करे और अपनी शक्तिसे विष्णुकी प्रसन्नताके लिये कृच्छ्रादिक व्रतोंको भी करे ।। १४ ।। क्रमसे कुम्हड़ा, बृहतीफल, तरुणी, शाक, मूली, बल, कलीन्दा, आमला, नारियल, लौकी, परवर, बेर, मूरी, बैंगन, लवलींशाक तथा तुलसीशाकये शाक क्रमसे प्रतिपदा आदि तिथियोंमें

नारिकेलमलाबुं च पटोलं ब्रदरीफलम्। चर्मवृन्ताकलवलीशाकं तुलसिजं तथा॥१६॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात् प्रतिपदादिषु। धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदाव्रती ॥१७॥ एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किंचिद्विष्णुव्रतपरायणः। तत्पुनर्ब्रह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदा व्रती ॥ १८ ॥ एवमेव हि माघे च कुर्याच्च नियमान्व्रती। हरेश्च जागरं तत्र प्रबोधोक्तं च कारयेत् ॥१९॥ यथोक्तकारिणं दृष्ट्वा कार्तिकव्रतिनं नरम्। यमदूताः पलायन्ते गजाः सिंहार्दिता इव ॥२०॥ वरं विष्णुव्रती ह्येको न यज्ञशतयाचकः। यज्ञकृत्प्राप्नुयात्स्वर्गं वैकुण्ठं कार्तिकव्रती ॥२१॥ भुक्ति-मुक्तिप्रदानीह यानि क्षेत्राणि भूतले। वसन्ति तानि तद्देहे कार्तिकव्रतकारिणः ॥ २२ ॥ कार्तिकव्रतिनः पुंसो विष्णुवाक्यप्रणोदिताः। रक्षां कुर्वंति शक्राद्या राजानं किंकरा यथा ॥२३॥ विष्णुव्रतकरो नित्यं यत्र तिष्ठति पूजितः। ग्रहभूतपिशाचाद्या नैव तिष्ठन्ति तत्र वै ॥२४॥ कार्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः। न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्मापि हि चतुर्मुखः ॥२५॥ विष्णुव्रतं सकलकल्मषनाशनं च सत्पुत्रपौत्रधनधान्यविवृद्धिकारि। ऊर्ज्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥२६॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वर्जित हैं। रविवारको आमलेका व्रती सदा त्याग करे ॥१५॥ १६॥१७॥ इन वस्तुओंके सिवाय और वस्तुओं को जो व्रती त्याग करे तो उन्हें ब्राह्मणके लिये देकर फिर सदा भोग लगावे ॥ १८ ॥ व्रत करनेवाला मनुष्य माघमें भी ऐसेही नियम करे और प्रबोधिनी एकादशीमें कहे हुए हरिके जागरणको करे ॥१९॥ कही हुई विधिके अनुसार कार्तिकके व्रत करनेवाले मनुष्यको देखकर यमदूत ऐसे भाग जाते हैं जैसे सिंहसे पीडित हाथी भाग जाते हैं ॥ २० ॥ विष्णुका व्रत करनेवाला एक श्रेष्ठ है और सौ यज्ञों से यजनकरनेवाला श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि यज्ञोंको करने वाला स्वर्गको जाता है और कार्तिकव्रत करनेवाला वैकुंठको जाता है ॥२१॥ इस पृथ्वीमें भुक्ति और मुक्तिको देनेवाले जितने तीर्थ हैं, वे सब कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यकी देहमें निवास करते हैं ॥२२॥ विष्णुके वाक्यसे प्रेरणा किये गये इन्द्रादिक देवता कार्तिकव्रत करनेवाले की ऐसी रक्षा करते हैं जैसे सेवक अपने राजाकी रक्षा करते हैं ॥२३॥ विष्णुव्रतको करनेवाला जहां पूजित हो स्थिर रहता है; वहां ग्रह, भूत, पिशाच, आदि निश्चयसे नहीं रहते हैं ॥२४॥ कही हुई विधिके अनुसार कार्तिक व्रत करनेवाले मनुष्यके पुण्यको चतुर्मुख ब्रह्मा भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २५ ॥ विष्णुका प्यारा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला और अच्छे पुत्र तथा धनधान्यकी वृद्धि करनेवाला ऐसा जो कार्तिकका व्रत है, उसेही जो मनुष्य नियमसे करता है, उसको तीर्थोंकी यात्रा और सेवासे क्या प्रयोजन है ॥ २६ ॥ इति श्रीमत्पंडित-परमसुखतनय–श्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नारद उवाच ॥ अथोर्ज्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं नृप । तं शृणुष्व मयाख्यातं सविधान समासतः ॥ १ ॥ ऊर्ज्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती । व्रतपूर्तिफलार्थं च विष्णुप्रीत्यर्थमेव च ॥ २ ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम् । सतोरणां चतुर्द्वारां पुष्प चामरशोभिताम् ॥३॥ द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृन्मयान् पृथक् । पुण्यशीलं सुशीलं च जयं विजयमेव च ॥४॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमुत्तमम् । चतुर्भिर्वर्णकैः सम्यक्छोभाढ्यं समलंकृतम् ॥५॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम् । महाफलेन संयुक्तं शुभं तत्र निधाय च ॥६॥ पूजयेतत्र देवेशं शंखचक्रगदाधरम् । कौशेयपीतवसनं युक्तं जलधिकन्यया ॥ ७ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डले पूजयेद् व्रती । द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां पुनः सुरैः ॥८॥ दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथावसौ । तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रयतमानसः ॥९॥ पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया । उपचारैः षोडशभिर्वानानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥१०॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः । ततः प्रभाते विमले कुर्यान्नित्यक्रियांनरः ॥११॥ होमं कुर्यात्ततो विप्रान्संतर्प्य प्रयतात्मवान् । शक्त्या तु दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥१२॥

नारद बोले—हे राजा ! इसके बाद अब मैं कार्तिकव्रत करनेवालेकी उद्यापनकी विधि भली-भांतिसे कहता हूँ, उसे तुम विधानसहित संक्षेपसे सुनो ।। १ ।। व्रत पूर्ण होने पर जो फल मिलता है उसके लिये और विष्णु भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कार्तिकशुक्ल चतुर्दशीके दिन व्रतका उद्यापन करे ।। २ ।। तुलसीके ऊपर तोरणयुक्त चार द्वारोंको फूल और चमरोंसे शोभित- सुन्दर मंडप बनावे ।। ३ ।। उसके चारों द्वारपर मृत्तिकाके बने हुए पुण्यशील, सुशील, जय, विजय, इन चारों विष्णुके द्वारपालोंकी पूजा करे ।। ४ ।। तुलसीके मूलके समीप चारों रंगोंसे भलीभांति शोभायुक्त अच्छे प्रकार अलंकृत उत्तम सर्वतोभद्र चक्र बनाये ।। ५ ।। उसके ऊपर पंचरत्न करके युक्त और श्रीफलसे शोभित शुभ कलश स्थापन करे ।। ६ ।। फिर उस कलशपर शंख गदाको धारण किये हुए और पीलें रेशमी वस्त्रेंको पहने हुये लक्ष्मी सहित जो देवदेवेश भगवान् विष्णु हैं उनकी पूजा करे ।। ७ ।। व्रती पुरुष मंडलमें इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा करे । द्वादशीको भगवान् जागे और त्रयोदशीको देवताओंसे देखे गये और चतुर्दशीको पूजन किये गये इस चतुर्दशी तिथिको शांत तथा सावधान मन हो भक्तिसे व्रत करे ।। ८ ।। ९ ।। गुरुकी आज्ञा लेकर देवदेवेश जो श्रीभगवान् हैं उनकी सुवरणकी प्रतिमा बनाकर नाना प्रकारके भोजन से युक्त षोडश उपचारोंसे पूजन करे ।। १० ।। रात्रिमें गीतवाद्य आदि मंगलोंसे जागरण करे उसके बाद सुन्दर प्रभात होनेपर मनुष्य नित्यक्रिया अर्थात् स्नान-ध्यान-संध्योपासन आदि करे ।। ११ ।। फिर होम करे उसके पीछे सावधान हो ब्राह्मणको भोजन करावे और धनकी

एवं येन कृत्वा राजन्वैकुण्ठाख्या चतुर्दशी । यस्यामुपोषणेनैव वैकुण्ठं प्राप्नुयान्नरः ॥१३॥ वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्या माहात्म्यं नैव शक्यते । वक्तुं वर्षशतैर्देवैः शेषेणापि विशेषतः ॥१४॥ गानं कुर्वंति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः । जन्मान्तरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः ॥ १५ ॥ नारायणाजिरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम् । गोसहस्रं च ददतां यत्फलं समुदाहृतम् ॥१६॥ गीतनृत्यादिकं कुर्वन्दर्शयन्कौतुकानि च । पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ यो जागरेद्धरेः ॥१७॥ पठन्विष्णुचरित्राणि यो रंजयति वैष्णवान् । तस्य पुण्यफलं विष्णुस्सालोक्यं च प्रदास्यति ॥१८॥ मुखेन कुरुते वाद्यं स्वेच्छालापांश्च वर्जयेत् । भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते हरिजागरम् दिनेदिने तस्य पुण्यं कोटितीर्थसमं स्मृतम् ॥ १९ ॥ ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् । त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या च निमंत्रयेत् ॥ २० ॥ वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः । अस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम् ॥२१॥ अतस्तान्भोजयेद्विप्रान्पायसान्नादिना व्रती ।अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥२२॥ प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक्पृथक् । दक्षिणां च यथाशक्ति प्रदद्यात्प्रणमेच्च तान्॥२३॥

शठता वर्जित अर्थात् लोभका त्याग करके अपनी शक्तिके अनुशार दक्षिणा दे ।। १२ ।। हे राजन् ! इस प्रकार जिसने वैकुण्ठ चतुर्दशीका व्रत किया वह मनुष्य इस चतुर्दशीके व्रतमात्रही से वैकुण्ठको प्राप्त करता है ।। १३ ।। वैकुण्ठ चतुर्दशीका माहात्म्य सैकड़ों वर्षों से देवता और विशेषकर शेषनाग भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं ।। १४ ।। जो मनुष्य भगवान् के जागरणमें भक्तिं से गान करते हैं वें सैंकडों जन्मोंमें उत्पन्न हुए पापोंके समूह से मुक्त होते हैं ।। १५ ।। नारायणके आंगनमें जो विष्णुके निमित्त गान और नृत्य करते हैं उनका पुण्य हजार गऊ देनेवालेके पुण्यके समान कहा गया है ।। १६ ।। वासुदेव भगवान्‌के आगे गीत और नृत्य आदिको करता हुआ और कौतुकको दिखाता हुआ रात्रिमें जो जागरण करता है और विष्णुके चरित्रोंका पाठ करता हुआ वैष्णवोंको प्रसन्न करता है, उनके पुण्य फलसे विष्णु भगवान् सालोक्य मुक्ति देते हैं ।। १७ ।। १८ ।। जो मुखसे बाजा बजाता है और स्वेच्छालाप अर्थात् वृथा बकबादका त्याग करता है इन भावोंसे जो मनुष्य हरिका जागरण करता है दिन-दिन उसका पुण्य कोटि तीर्थयात्राके समान माना गया है ।। १९ ।। उसके बाद पूर्णमासीको पत्नीसहित उत्तम तीस ब्राह्मणोंको अथवा एकको अपनी शक्तिके अनुसार न्यौता दे ।। २० ।। क्योंकि विष्णु वर देकर मत्स्यरूप हुये अतः इसमें दिये हुये तथा जप किये का अक्षय फल कहा गया है ।। २१ ।। इससे व्रती उन ब्राह्मणोंको खीर आदि का भोजन करावे और 'अतो देवा' इत्यादि दो ऋचाओंसे तिल और खीरका होम करे ।। २२ ।। देवदेव जो विष्णु हैं उनकी तथा देवताओंकी पृथक्-पृथक् यथाशक्ति दक्षिणा दे और उनको प्रणाम करे ।।२३।। उसके बाद व्रती भगवान्‌की पूजा करके देवताओंकी तथा तुलसी

पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा। ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिना व्रती ॥ २४ ॥ गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालंकरणादिभिः। सपत्नीकं समभ्यर्च्य तांश्च विप्रान्क्षमापयेत् ॥२५॥ प्रार्थनामंत्रः–युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम। व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया ॥२६॥ तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः। मनोरथाश्च सफलाः संतु नित्यं ममार्चया ॥ २७ ॥ देहांते वैष्णवं स्थानं प्राप्नुयामतिदुर्लभम् ॥ २८ ॥ इति क्षमाप्य तान्विप्रान्प्रसाद्य च विसर्जयेत्। तामर्चां गुरवे दद्याद्गवायुक्तां तदा व्रती ॥ २९ ॥ ततः सुहृद्गणयुतः स्वयं भुंजीत भक्तिमान्। कार्त्तिके वाथ तपसि विधिरेवंविधः स्मृतः ॥३०॥ एवं यः कुरुते सम्यक्कार्त्तिकस्य व्रतं नरः। विपाप्मा सर्वकामाढ्यो विष्णुसान्निध्यगो भवेत् ॥३१॥ सर्वव्रतैः सर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम्। तत्कोटिगुणितं ज्ञेयं सम्यगस्य विधानतः ॥३२॥ ते धन्यास्ते सदा पूज्यास्तेषां च सफलो भवः। विष्णु भक्तिरता ये स्युः कार्त्तिकव्रतकारिणः ॥३३॥ देहे स्थितानि पापानि कम्पं यान्ति च तद्भयात्। क्व यास्यामो भवत्येष यद्यूर्ज्जव्रतकृन्नरः ॥ ३४॥ इत्यूर्जव्रतनियमाञ्छृणोति भक्त्या यो वै तान्कथयति वैष्णवाग्रतोऽपि। तौ सम्यग्व्रतनियमात्फलं भवेद्यत्तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभेते ॥ ३५ ॥

की पूजा करे, उसके बाद विधिपूर्वक कपिला गौका पूजन करे ।। २४ ।। फिर व्रतके उपदेश करनेवाले गुरुको पत्नीसहित वस्त्र-आभूषण आदि से पूजनकर उन ब्राह्मणोंसे क्षमापन करावे ।। २५ ।। प्रार्थनाके मंत्र–तुम्हारे प्रसादसे देवताओंके स्वामी भगवान् मेरे ऊपर सदा प्रसन्न हों और इस व्रतसे सात जन्मके किये हुए जो मेरे पाप है वे सब नाशको प्राप्त हों और मेरी संतति स्थिर हो और मेरी पूजासे तुम्हारे मनोरथ सदा सफल हों ।। २६ ।। २७ ।। और देहान्तके समयमें अति दुर्लभ जो वैष्णव स्थान है उसको प्राप्त होऊँ ।। २८ ।। ऐसे उस ब्राह्मणसे क्षमापन कराकर और प्रसन्न कराकर उनका विसर्जन कर- व्रती पूजाको गऊसमेत गुरुको दान करे ।। २९ ।। उसके बाद भक्तिमान्पुरुष मित्रवर्गों समेत आप भोजन करे, कार्त्तिकमें अथवा माघमें इसी प्रकारकी विधि कही है ।। ३० ।। ऐसे जो मनुष्य कार्तिकका व्रत भली-भाँति करता है वह पापरहित सब कामनाओंसे युक्त हो विष्णुकी समीपताको प्राप्त होता है ।। ३१ ।। सम्पूर्ण व्रत, संपूर्ण तीर्थ और सब प्रकारके दान करने से जो फल प्राप्त होता है उससे कोटिगुणा फल उस व्रतके भली भांति करनेसे प्राप्त होता है ।। ३२ ।। वे धन्य हैं, वे सदा पूज्य हैं और उनका जन्म सफल है जो विष्णुभक्तिमें रत होकर कार्तिकमासका व्रत करते हैं ।। ३३ ।। देहमें स्थित पाप उस व्रतके भयसे कंपायमान होते हैं और कहते हैं कि, यह मनुष्य तो कार्तिकव्रत करनेवाला है तो अब हम कहां जांय ।। ३४ ।। इस प्रकार कार्त्तिक व्रतके नियमोंको जो भक्तिसे श्रवण करते हैं और वैष्णवोंके आगे कहते हैं वे दोनों, जो फल कार्त्तिकव्रत नियमसे प्राप्त होते हैं, पापोंके नाश

इति श्रीपद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्येमष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पृथुरुवाच ॥ यत्त्वया कथितं ब्रह्मन्व्रतमूर्जस्य विस्तरात् । तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥१॥ तेनाहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् । कथं साऽतिप्रिया जाता देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥ कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारद । तद्ब्रूहि मे समासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् । सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥४॥ यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान् । पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्रानयनभीषणम् ॥५॥ सपृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क गतो जगदीश्वरः । एवं पुनः पुनः पृष्टस्स यदा नोचिवान्नृप ॥६॥ ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत् ॥ इन्द्र उवात ॥ यन्माया पृच्छयमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥ ७ ॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्राताऽस्ति दुर्मते । इत्युदीर्य ततो वज्री वज्रेणाभ्यहनद्दृढम् ॥ ८ ॥ तेनास्य कण्ठे नीलत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम् । ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥९ ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् । न्द्रं च दण्डवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥१०॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय त्र्यंबकाय कपर्दिने । त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥ ११ ॥

करनेवाले उन सब फलोंको प्राप्त होते हैं ।। ३५ ।। इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनय श्रीपंडितकेशवप्रसाद शर्मद्विवेदिकृतायां कार्त्तिकमाहात्म्य भाषाटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायामष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।। पृथु बोले–हे महाराज ! जो तुमने कार्त्तिकका व्रत विस्तार सहित कहा उसमें तुमने जो तुलसीके मूलमें विष्णुका पूजन वर्णन किया ।। १ ।। उससे मैं जो तुलसीका माहात्म्य है उसे पूछना चाहता हूँ । वह तुलसी देवदेव जो भगवान् हैं उनको अति प्यारी क्यों हुई ? ।।२।। नारद ! यह तुलसी कैसे और किस स्थानमें उत्पन्न हुई ? तुम सर्वज्ञ हो अतः संक्षेप में मुझसे वर्णन करो ।। ३ ।। नारद बोले–पहले सब देवताओंसे युक्त और अप्सराओं से सेवित इन्द्र शिवजीके दर्शनके लिये कैलासपर्वतपर गये ।। ४ ।। इन्द्रने शिवके स्थानमें जाते ही भयंकर हैं कर्म जिसके और दाढों तथा आंखोंसे भयानक एक पुरुष देखा ।। ५ ।। उससे इन्द्रने पूछा कि, रे तू कौन है ? जगत्के ईश्वर शिवजी कहां गये ? हे राजा ! इस प्रकार वारंवार पूछने पर जब वह कुछ न बोला ।। ६ ।। तब इंद्र क्रोधित हो उससे बोले । इंद्र बोले–जो मेरे पूछने पर भी तैंने उत्तर नहीं दिया है ।। ७ ।। अतः मैं तुमको वज्रसे मारता हूँ । हे दुर्बुद्धे तेरा रक्षक कौन ? ऐसा कहकर इंद्रने दृढ वज्रसे उसको मारा ।।८।। वज्रके लगनेसे उस पुरुषके कंठमें नीलता आ गई और वह वज्र भस्मभावको प्राप्त हुआ उसके बाद रुद्र तेजसे जलाते हुये ।।९।। देखकर बृहस्पतिजी शीघ्रही हाथ जोड़कर इन्द्रको भूमिमें दंडवत् प्रणाम कराकर स्तुति करने लगे ।।१०।। बृहस्पति बोले–कि देवताओंके अधिदेवता त्रिदेव तथा कपर्दी जो आप हैं उनको नमस्कार है और त्रिपु-

विरूपायातिरूपाय बहुरूपाय शंभवे । ज्ञानविध्वंसकर्त्रे वै यज्ञानां फलदायिने ॥ १२ ॥ कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च । नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्रह्मण्याय नमो नमः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं स्तुतस्तदा शंभुर्धिषणेन जगाद तम् । संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम् ॥१४॥ वरं वरय भो ब्रह्मन् प्रीतः स्तुत्याऽनया तव । इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥१५॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् । अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ १६ ॥ रुद्र उवाच ॥ पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी । एतत्क्षिपाम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥१७॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणार्णवे । सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्य च सङ्गमे ॥१८॥ तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च । रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः ॥१९॥ स्वर्गादिसत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद्बधिराः कृताः । श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥२०॥ तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तंतु बालं ददर्श ह । ततो ब्रह्माऽब्रवीद्वाक्यं कस्यायं शिशुरद्भुतः ॥२१॥

रासुरके नाश करनेवाले शर्व तथा अंधकदैत्यके मारनेवाले जो आप हैं उनको नमस्कार है ।। ११ ।। विरूप, अतिरूप और बहुरूप जो आप हैं उनको नमस्कार है, दक्षके विध्वंस करनेवाले और यज्ञके फल देनेवाले जो आप हैं आपको नमस्कार है ।। १२ ।। कालके नाश करनेवाले और कालस्वरूप काले साँपके धारण करनेवाले और ब्रह्माका शिर छेदन करनेवाले और ब्राह्मणोंके हितकारी जो आप हैं, आपको वारंवार नमस्कार है ।। १३ ।। नारद बोले, इस समय बृहस्पतिसे ऐसे स्तुति किये गये शिवजी त्रिलोकीके जलानेको समर्थ ऐसी नेत्रकी अग्निको शांत करते हुये उनसे बोले ।।१४।। हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ, वर मांगो और इंद्रका जीवदान करनेसे तुम जीव इस नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हो ।।१५।। बृहस्पति बोले–हे देव ! जो तुम प्रसन्न हुये हो, तो शरणमें आया जो इंद्र है उसकी रक्षा करो और मस्तकके नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि शांतिको प्राप्त हो ।। १६ ।। रुद्र बोले–मस्तकके नेत्रमें यह अग्नि फिर कैसे प्रवेश कर सकती है ? इसको, मैं दूर फेंकता हूँ, जिससे इन्द्रको पीडा न करे ।। १७ ।। नारद बोले–शिवजी ऐसे कहकर उस अग्निको हाथमें लेकर खारे समुद्रमें फेंक दिया तब वह अग्नि गंगासागरके संगममें गिरी ।। १८ ।। वह अग्नि वहां बालक होकर रोने लगी, तब रोते हुये उस बालकके शब्दसे वारंवार धरती कांपने लगी ।। १९ ।। और उसने स्वर्गसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त सकल लोक बहरे कर दिये । रोनेका शब्द सुनकर यह क्या है, विस्मित हो ब्रह्मा वहां आये ।। २० ।। आलेही समुद्रकी गोदीमें उस बालकको देखकर ब्रह्मा बोले कि, यह अमृत बालक किसका है ? ।। २१ ।। यह ब्रह्माका वचन सुनकर समुद्र बोला और ब्रह्माको

निशम्येति वचो धातुर्वाक्यं सिन्धुरथाब्रवीत् । दृष्ट्वा ब्राह्मणमायान्तं समुद्रोऽपि कृताञ्जलिः ॥ २२ ॥ प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्संगे न्यवेशयत् । भो ब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायां जातोऽयं मम पुत्रकः॥२३॥ जातकर्मादि संस्कारान्कुरुष्वास्य जगदगुरो ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कुर्चं विधुन्वँस्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चं तन्नेत्राभ्यामगलज्जलम् ॥२५॥ कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽयं ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् । ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यामुद्धृत यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥२६॥ तस्माज्जलंधर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति ॥२७॥ अधुनैवैष तरुणः सर्वशास्त्रार्थ पारगः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥२८॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत् । आमंत्र्य सरितां नाथं ब्रह्माऽन्तर्धानमागमत् ॥२९॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा । कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ ३० ॥ ते कालनेमि प्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुः प्रहर्षिताः स ॥ चापि तां प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली ॥३१ ॥ इति पद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥९॥ नारद उवाच॥ ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः । तेऽपि भूमण्डले जाता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥ १ ॥

आते हुये देखकर समुद्रने भी हाथ जोड लिया ॥२२॥ शिरसे प्रणाम करके वह बालक उनकी गोदीमें बैठा दिया और कहा कि गंगासागरके संगममें उत्पन्न हुआ यह मेरा पुत्र है ॥ २३ ॥ हे जगत्के गुरु इसके जातकर्म आदि संस्कार कीजिये । नारद बोले–समुद्र ऐसे कह रहे थे कि समुद्रका पुत्र यह बालक ब्रह्माकी डाढ़ी पकड़ कर बारंबार हिलाने लगा तब उनकी डाढ़ी पकड़कर हिलानेसे ब्रह्माके नेत्रोंसे जल गिरा अर्थात् अश्रुपात हुआ ॥२४॥ २५ ॥ बड़ी कठिनाईसे जब डाढी छुड़ा पाई तब ब्रह्माने समुद्रसे कहा । ब्रह्मा बोले–जिसके द्वारा हमारे नेत्रोंसे जल निकाला गया है वह जलंधर इस नामसे प्रसिद्ध होगा ॥२६॥ २७॥ अभी यह तरुण और सब शास्त्रों के अर्थका पारंगामी होगा और रुद्रके विना सब जीवोंसे अवध्य होगा अर्थात् रुद्रके विना इसको कोई न मार सकेगा। ॥२८॥ जहांसे यह उत्पन्न हुआ है वहीं फिर लीन हो जायगा । नारद बोले, ऐसे कह कर शुक्राचार्यको बुलवाय उसे राज्यगद्दीपर बैठाया फिर समुद्रसे आज्ञा लेकर ब्रह्मा अन्तर्धान होगये ॥ २९ ॥ इसके बाद उसके देखनेसे प्रसन्न नेत्र सागरने उसकी स्त्रीके लिये कालनेमिकी जो सुता वृन्दा थी उसकी याचना की ॥ ३० ॥ उसके बाद कालनेमि आदि असुरोंने प्रसन्न होकर उस पुत्रीको दान किया, यह बली जलंधर अतिप्रीति करनेवाली और बसमें रहनेवाली उसको पाकर शुक्राचार्यकी सहायतासे पृथ्वीका पालन अर्थात् राज्य करने लगा ॥३१॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीमत्पंडित–केशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारद बोले–पहिले देवताओं

कदाचिच्छिन्नशिरसं दृष्ट्वा राहुं स दैत्यराट्। पप्रच्छ भार्गवं तस्य शिरसश्छेदकारणम् ॥२॥ स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम्। रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् ॥३॥ स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा। दूतं संप्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ ॥४॥ दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशत्त्वरा । जगादाखर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम् ॥५॥ घस्मर उवाच ॥ जलंधरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत् ॥६॥ कस्मात्त्वया मम पिता मथितस्सागरोऽद्रिणा। नीतानि सर्व रत्नानि तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥७॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः। उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृणु दूत मया पूर्वं मथितः सागरो यथा। अद्रयो मद्भयाद्भीताः स्वकुक्षिस्थाः कृतास्तथा ॥९॥ अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा। तस्मात्तद्रत्नजातं तु मयाप्यपहृतं किल ॥१०॥ शंखोऽप्येवं पुरा देवानद्विषत्सागरात्मजः॥ ममानुजेन निहतः प्रविष्टः सागरोदरे॥११॥ तद्गच्छ कथय स्वस्य सर्वं मथनकारणम्॥ नारद उवाच॥ इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणागमद्भुवम् ॥१२॥ तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाकथयत्तदा॥ तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥ १३ ॥

से जीते हुए जो दैत्य पातालमें स्थित हैं वेही जलंधरके आश्रयसे पृथ्वीमंडलमें निर्भय हो गये ।। १ ।। किसी समय राहुका शिर कटा हुआ देखकर वह दैत्यराज उसके शिर कटनेके कारणको शुक्राचार्यसे पूछने लगा ।।२।। तब शुक्राचार्यने देवताओंसे कराये हुए समुद्रके मंथनको और रत्नोंके हरलेनेको और दैत्योंके पराभवका वर्णन किया ।। ३ ।। तब वह जलंधर अपने पिताका मथना सुनकर क्रोधसे लालनेत्र कर घस्मरनाम दूतको इन्द्रके समीप भेजा ।। ४ ।। दूत स्वर्गमें जा कर सुधर्मानामक देवसभामें प्रवेश किया । अखर्वमौलि वह घस्मर देवेन्द्रसे अद्भुत वचन बोला ।।५।। घस्मर बोला—समुद्रका पुत्र जलंधर सब दैत्योंका स्वामी है उसने मुझे दूत बनाकर भेजा है और जो कहा है उसे सुनो ।। ६ ।। मेरे पिता सागरको तुमने पर्वतसे क्यों मथा ? और जो तुमने रत्न हरण किये हैं उन्हें तुम शीघ्र मुझे वापस दे दो ।। ७ ।। इस प्रकार दूतका वचन सुनकर विस्मित इन्द्र भयानक घस्मरसे भय और क्रोधयुक्त हो बोले ।। ८ ।। इन्द्र बोले—हे दूत ! जो हम लोगोंसे पहले सागर मथा गया वह सुनो । मेरे भयसे भीत पर्वत उसने अपनी कुक्षिमें स्थापित किया ।। ९ ।। पहले अन्य मेरे शत्रु दैत्य भी उससे रक्षा किये गये । उससे उसके रत्नसमूह निश्चय ही मेरे द्वारा हरे गये ।। १० ।। पहले सागर का पुत्र शंख भी देवताओंसे द्वेष करता था, समुद्रके भीतर घुसता हुआ वह मेरे छोटे भाई द्वारा मारा गया ।। ११ ।। इसलिये जाओ और सब मथनेका कारण जलंधरसे कहो । नारद बोले, तब इन्द्रसे विसर्जन किया गया दूत पृथ्वीमें आया ।। १२ ।। यह सब वचन दैत्यसे कहा । दैत्य उसे सुनकर क्रोधसे होंठ काँपने लगे, सब देवताओंके जीतनेकी

उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया । तदोद्योगेऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तदा ॥ १४ ॥ दितिजाः प्रत्यपद्यन्त कोटिशः कोटिशस्तदा । अथ शुंभनिशुंभाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः ॥१५॥ गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत् । निर्ययुश्चामरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ॥१६॥ पुरमावृत्य तिष्ठन्तं दृष्ट्वा दैत्यबलं महत् । ततः समभवद्युद्धं देवदानव सेनयोः ॥ १७ ॥ मुसलैः परिघैर्बाणैर्गदाशक्तिपरश्वधैः तेन्योऽन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम् ॥१८॥ क्षीणे चाभवतां सैन्ये रुधिरौघप्रवर्तिनी । पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्व रथपत्तिभिः ॥ १९ ॥ व्यराजत रणे भूमिः संध्याभ्रपटलैरिव । ततो युद्ध हतान्दैत्यान् भार्गवः समजीवयत ॥२०॥ विद्यया मृतजीविन्या मंत्रितैस्तोयबिंदुभिः । देवानपि तथा युद्धे तत्राजीवयदङ्गिराः ॥२१॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेः स पुनः पुनः । दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान् ॥ २२ ॥ जलन्धरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ जलन्धर उवाच ॥ मया देवा हता युद्धे उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः ॥२३॥ तवेयं जीविनी विद्या नैवान्यत्रेति विश्रुतम् ॥ शुक्र उवाच ॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरंगिराः सुरान् । जीवयत्येष तच्छीघ्रं द्रोणाद्रिं त्वमपाहर ॥२४॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वा द्रोणाचलं तदा । प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं पुनरागान्महाहवम् ॥२५॥

इच्छासे शीघ्र उद्योग करने लगा, उस समय उस असुरेंद्र अर्थात् जलंधरके उद्योगमें दिशाओंसे और पातालसे करोड़ों दैत्य और शुंभ निशुंभ आदि करोड़ों सेनाके अधिपति आये ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ वह दैत्य जलंधर स्वर्गमें जाकर नंदनवनमें स्थित हुआ, तब पुरको घेरकर स्थित हुआ बड़ी भारी दैत्योंकी सेनाको देखकर देवता कवच धारण कर युद्धके अर्थ अमरावतीसे निकले उसके बाद देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंमें युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ १७ ॥ मूसल, लुहांगी, तीर, गदा, बरछी, फरसा लेकर वे दोनों सेना दौड़ीं और आपसमें मार होने लगी ॥ १८ ॥ दोनों सेना गिरे हुये और गिराये हुये हाथी, घोड़े, रथ प्यादोंसे रुधिरके प्रवाहकी प्रवृत्ति करती हुई क्षीणताको प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ संध्याके मेघसमूहोंसे रण-भूमि शोभित हुई । उसके बाद युद्धमें मारे गये दैत्योंको शुक्राचार्य मृत-संजीवनी विद्याको पढ़कर छिड़के हुए जलके बूँदोंसे जिलाने लगे ऐसे बृहस्पतिजी भी उस युद्धमें मरे हुए देवताओंको जिलाने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥ द्रोणाचलसे दिव्य औषधि लाकर युद्धमें मारे गये और फिर उठे हुए देवताओंको देखकर ॥ २२ ॥ जलंधर क्रोधित हो शुक्राचार्यसे बोला । जलंधर बोला–मुझसे मारे गये देवता फिर कैसे उठते हैं ? तुम्हारी यह जीवनी विद्या अन्यत्र नहीं है यह प्रसिद्ध है । शुक्राचार्य बोले–द्रोणाचलसे दिव्य औषधि लाकर अंगिराके पुत्र बृहस्पति जिलाते हैं अतः तू द्रोणाचलको शीघ्र हर लो ॥ २३ ॥ २४ ॥ नारद बोले–ऐसे

अथ देवान् हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः । तावत्तत्र गिरीन्द्रं तु न ददर्श सुरार्चितः ॥२६॥ ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः । आगत्य दूरात्प्रोवाच श्वासाकुलित विग्रहः ॥ २७ ॥ गुरुरुवाच ॥ पलायध्वं महादैत्यो नायं जेतुं यतः क्षमः । रुद्रांशसंभवो ह्येष स्मरध्वं शक्रचेष्टितम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा । दैत्येन वध्यमानास्ते पलायन्ते दिशो दश ॥२९॥ स देवान्विद्रुतान् दृष्ट्वा दैत्यः सागरनन्दनः । शंखभेरीजयरवैः प्रविवेशामरावतीम् ॥ ३० ॥ प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः । सुवर्णाद्रि गुहां प्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः ॥ ३१ ॥ एवं देवान् विनिर्जित्य तत्र राज्यं चकार सः ॥ ३२ ॥ ततस्तु सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयत्तदा । शुम्भादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रि-गुहामगात्पुनः ॥ ३३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवास्सवासवाः । भयप्रकम्पितास्सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥१॥ देवा ऊचुः ॥ नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहंत्रे। विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशंखपद्मारिहस्ताय तेस्तु॥२॥

कहा गया वह दैत्येन्द्र द्रोणगिरिको लेकर शीघ्रही समुद्रमें फेंक दिया और फिर महायुद्धमें आया ॥ २५ ॥ इसके बाद देवताओंको मारा गया देख बृहस्पति द्रोणाचलको गये । देवताओंसे पूजित बृहस्पतिने वहां द्रोणाचलको न देखा ॥ २६ ॥ द्रोणाचलको दैत्यसे हरा गया जान भयसे विह्वल बृहस्पति जी आकर श्वाससे व्याकुल शरीर हो दूरहीसे बोले ॥ २७ ॥ बृहस्पति बोले—भागो, रुद्रके अंशसे उत्पन्न यह दैत्य जीतने योग्य नहीं है, इन्द्रके कामको स्मरण करो अर्थात् इंद्रहीके उपद्रवसे उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ उस समय देवता बृहस्पतिका वचन सुनकर भयसे व्याकुल और दैत्यसे वध्यमान हो दशों दिशाओंमें भाग गये ॥ २९ ॥ सागर का पुत्र दैत्य देवताओंको भगा देखकर शंख भेरी और जयका शब्द करता हुआ अमरावतीमें प्रवेश कर गया ॥ ३० ॥ नगरीमें दैत्यके प्रवेश करने पर इन्द्रादिक देवता दैत्यसे तापित हो सुमेरु पर्वतकी गुफामें जाकर वास करने लगे ॥ ३१ ॥ वह दैत्य देवताओंको जीतकर अमरावतीमें राज्य करने लगा ॥ ३२ ॥ उसके बाद वह असुर इन्द्रादिक सब देवताओंको अधिकारमें शुंभादिक श्रेष्ठदैत्योंको पृथक्-पृथक् स्थापित कर फिर स्वयं सुमेरु पर्वतकी गुफामें गया ॥ ३३ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्तिक-माहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्याया दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारद बोले इन्द्रादिक सब देवताओंने फिर दैत्योंको आते हुये देखकर भयसे कम्पित हो विष्णुकी स्तुति करना आरम्भ किया ॥१॥ देवता बोले, मत्स्य, कूर्म आदि नाना स्वरूपोंसे भक्तोंके लिये उद्यत और दुःख के दूर करनेवाले आपको नमस्कार है । विधाता आदि ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप धारण करके जगतकी सृष्टि, पालन तथा संहार करने-

रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय। मखाधिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥३॥ नमो दैत्यसंतापिताऽमर्त्यदुखाचलध्वंसदंभोलये विष्णवे ते। भुजंगेशतल्पशय्यायार्कचन्द्र-द्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥४॥ नारद उवाच ॥ संकष्टनाशनं स्तोत्रमेतद्यस्तु पठेन्नरः। स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥५॥ इति देवाः स्तुतिं यावत्कुर्वन्ति दनुजद्विषः। तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुनातदा ॥६॥ सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः। आरूढो गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् ॥७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम्। तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्य त्वरान्वितः ॥८॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता च यदि सर्वदा। तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वरदानतः। प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलन्धरः ॥१०॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा गरुडारूढः शंखचक्रगदासिभृत। विष्णुर्वेगाद्ययो योद्धुं यत्र देवाः स्तुवन्ति ते ॥११॥ अथारुणानुजात्युग्रदक्षवातप्रपीडिताः। वात्या वितर्जिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ १२ ॥

वाले और गदा, शंख, पद्म तथा चक्र हाथोंमें धारण करनेवाले आपको हम सब नमस्कार करते हैं ।। २ ।। लक्ष्मीके प्रिय, असुरोंके मारनेवाले, गरुड़पर चढ़कर चलनेवाले पीताम्बर धारण करनेवाले, यज्ञादिक क्रियाओंके पाक करनेवाले, विशिष्टको करनेवाले और शरणागतकी रक्षा करनेवाले आपको वारंवार नमस्कार है ।।३।। दैत्योंसे तापित जो मनुष्य हैं उनके दुःखरूपी पहाड़के ध्वंसके लिये वज्ररूप, शेषनागरूपी शय्यापर सोनेवाले और सूर्य चंद्रमारूप दो नेत्र हैं जिनके ऐसे आपको वारंवार नमस्कार है ।।४।। नारद बोले–जो मनुष्य इस संकट नाशन स्तोत्रको पढ़ेगा वह हरिकी कृपासे कदापि कष्टोंसे पीड़ित न होगा ।।५।। इस प्रकार देवताओंने जब दैत्यके शत्रु भगवान् की स्तुति की तो भगवान् ने देवताओंकी विपत्ति जानी ।। ६ ।। क्रोधित और खेदयुक्त मन दैत्योंके शत्रु भगवान् झट उठकर शीघ्रही गरुडपर चढ़कर लक्ष्मी से बोले ।। ७ ।। श्रीभगवान् बोले–तुम्हारे भाई जलंधरने देवताओंको दुःख दिया है इससे उन देवताओंसे बुलाया गया मैं युद्धके लिये शीघ्र जाऊंगा ।। ८ ।। लक्ष्मी बोलीं–जो मैं तुम्हारी प्यारी और सदा भक्त हूँ तो हे कृपानिधे ! मेरा भाई युद्धमें तुमसे कैसे मारने योग्य होगा ? ।। ९ ।। श्रीभगवान् बोले–रुद्रके अंशसे उत्पन्न होने और तुम्हारी प्रीतिसे यह जलंधर हमारे मारने योग्य नहीं है ।। १० ।। नारद बोले–ऐसे कह गरुड़पर चढ़े हुये शंख, चक्र, गदा और नंदक (तलवार) को धारण किये भगवान् जहां देवता स्तुति कर रहे थे वहां शीघ्र युद्धके लिये गये ।। ११ ।। इसके उपरांत अरुणके अनुज अर्थात् छोटे भाई गरुड के प्रचंड पंखोंके पवनसे पीडित और बादलसे उड़ाये गये दैत्य आकाशमें मेघों के समान घूमने लगे ।। १२ ।। तदनन्तर जलंधर दैत्योंको पवनसे पीडित देख क्रोधसे आकाशमें उछलकर विष्णुके समीप गया ।। १३ ।। उसके

ततो जलंधरो दृष्ट्वा दैत्यान्वातप्रपीडितान् । क्रोधादुत्पत्य गगने ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥१३॥ ततस्समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत् । आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥१४॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् । चिच्छेद तंच हृदये बाणेनैकेन चाहनत् ॥१५॥ ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः । आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥१६॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव । तावत्स हृदये विष्णोर्जघान दृढमुष्टिना ॥१७॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ । बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ रुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् । उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥१९॥ विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् । अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ २० ॥ जलन्धर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेकं ददस्व मे । मद्भगिन्या सहाद्य त्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह । तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह ॥२२॥ जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषुदानवान् । स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान्महीतलम् ॥ २३ ॥ देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंज्ञितम् । तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः ॥ २४ ॥

बाद बाणोंसे आकाशको अवकाश रहित अर्थात् बाणपूरित करता हुआ, दैत्येन्द्र और विष्णु में बड़ा युद्ध हुआ ॥१४॥ विष्णुने बाणोंके समूहसे दैत्यके छत्र धनुष और घोड़े काट दिये और उसके हृदयमें भी एक बाण मारा ॥ १५ ॥ तब वह दैत्य गदा हाथमें ले अतिशीघ्रता से उछल गरुड़के मस्तकमें मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥१६॥ विष्णुने हँसकर उसकी गदाको अपने खड्गसे काटा तब वह विष्णुके हृदयमें एक प्रबल घूसा मारा ॥१७॥ तब वे दोनों बली बाहुयुद्ध अर्थात् कुस्ती वा मलयुद्ध करने लगे। बाहुओंसे घूंसोंसे घोटुओंसे पृथ्वीको शब्दायमान करते युद्ध करते हुये ॥१८॥ वे दोनों सुंदर युद्ध करने लगे तब प्रतापवान् विष्णु मेघके समान गंभीर वाणीसे दैत्यराजसे बोले ॥१९॥ विष्णु बोले,–हे दैत्येन्द्र ! तू वर मांग, मैं तेरे पराक्रमसे प्रसन्न हूँ. न देने योग्य भी जो तेरे मनमें हो मैं तुझे देता हूँ ॥ २० ॥ जलंधर बोला–हे भगिनीपति ! जो आप प्रसन्न हो तो मुझे एक यह वर दो कि आप मेरी बहिनी अर्थात् लक्ष्मीजी और अपने गणों समेत मेरे घरमें वास करो ॥२१॥ नारद बोले––तथास्तु, ऐसे कहकर- भगवान् सब देवगणों और लक्ष्मी सहित जलंधरके नगरको गये ॥२२॥ महाबाहु जलंधर तो देवताओंके अधिकारों पर दैत्योंको स्थापित कर फिर पृथ्वीमें आया ॥२३॥ देवता गंधर्व सिद्ध इन सबोंमें जो कुछ रत्न अर्थात् सर्वोत्तम वस्तु थीं उनको अपने वशमें

देवगन्धर्व सिद्धाद्यान्सर्पराक्षसमानुषान् । स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥ २५ ॥ एवं जलन्धरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः । धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ २६ ॥ न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा । दीनो न दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशाशति ॥ २७ ॥ एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च दिदृक्षयाहम् । कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणं च सेवितुम् ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ स मां सम्पूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिभक्तिमान् । संप्रहस्य तदा वाक्यं जगाद भुवनेश्वरः ॥१॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन्किंचिद् दृष्टं त्वया प्रभो । यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥ ॥२॥ नारद उवाच ॥ गतः कैलाशशिखरे दैत्येन्द्राहं यदृच्छया । तत्रोमया सहासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम् ॥ ३ ॥ योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने । कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥ ४ ॥ तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्को मेऽभवत्तदा । क्वापीदृशी भवेद् वृद्धिस्त्रिलोक्यां वा नवेति च ॥ ५ ॥

करके वह सागरनन्दन स्थित हुआ ।।२४।। देवता, गंधर्व, सिद्ध आदिकोंको और सर्प, राक्षस तथा मनुष्योंको अपने पुरमें नगर-निवासी करके तीनों लोकका राज्य करने लगा ।।२५।। इस प्रकार जलंधर देवताओंको अपने वशमें करके प्रजाओंको धर्मसें निजपुत्रके समान पालने लगा ।।२६।। इस जलंधरके धर्मराज्य करनेके समय कोई रोगी न था, न दुःखी, न दुर्बल, न दरिद्री दिखाई देता था अर्थात् उस राज्यमें सब प्रजा आनंद मंगलसे समयको व्यतीत करती थी ।।२७।। नारदमुनि कहते हैं कि, ऐसे उस दानवेन्द्रके धर्मसे राज्य करनेके समय में उसकी राज्यलक्ष्मी देंखने और विष्णुका सेवन करने मैं वहां किसी समय गया-।।२८।। इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्याया-मेकादशोऽध्यायः ।।११।। नारद बोले––अतिभक्तियुक्त वह भुवनेश्वर दैत्योंका राजा मेरी विधिपूर्वक पूजा करके उस समय हँस कर वचन बोला ।।१।। हे ब्रह्मन्! आपका कहांसे आगमन हुआ ? हे प्रभु! आपने कहीं कुछ देखा है! जिसके लिये यहां आये हो। हे मुनीश्वर! मुझे आज्ञा दीजिये ।।२।। नारद बोले––हे दैत्येन्द्र! मैं अपनी इच्छासे कैलास पर्वतपर गया वहां मैंने पार्वतीके सहित बैठे हुए शंकर को देखा।। ३ ।। वह कैलास दस हजार योजन चौड़ा है और कल्पवृक्षोंका उसमें बड़ा बन है और सैकड़े कामधेनुओंसे भरा हुआ है और चिन्तामणियोंसे प्रकाशमान हो रहा है ।।४।। उस बड़े आश्चर्यको देखकर मेरे

तदा तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिःसंस्मृता मया । तद्विलोकनकामोऽहं त्वत्सान्निध्यमिहागतः॥६॥ त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम् । तर्कयामि शिवादन्यास्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥७॥ अप्सरोनागकन्याद्या यद्यपि त्वद्गृहे स्थिता । तथापि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ॥८॥ यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः। स्ववार्यममुचत्पूर्वं तया काऽन्योपमीयते ॥९॥ वीतरागोऽपि च यया मदनारिः स्वलीलया। सौन्दर्य्यगहनेऽभ्रामि शफरीरूपया पुरा ॥ १० ॥ यस्याः पुनः पुनः रूपं पश्यन्धातापि सज्जन । ससर्जाप्परसस्तासां तत्समैकापि नोऽभवत् ॥११॥ अतः स्त्रीरत्नसंभोक्तुस्समृद्धिस्तस्य सा वरा । तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥१२॥ एवमुक्त्वा तमामंत्र्य गते मयि स दैत्यराट् । तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वर पीडितः ॥१३॥ अथ संप्रेषयामास दूतं तु सिंहिकासुतम् । त्र्यंबकाय तदा किंचिद्विष्णुमायाविमोहितः ॥१४॥ कैलासमगमद्राहुः कुर्वञ्छुक्लेन्दुवर्चसम् । कार्ष्ण्येन कृष्णपक्षेन्दुवर्चसं स्वांगजेन तम् ॥१५॥ निवेदितस्तु देवाय नन्दिना प्रविवेश सः । त्र्यंबकभ्रूलतासंज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥

मनमें बड़ा वितर्क हुआ की त्रिलोकीमें कहीं ऐसी ऋद्धि है कि नहीं ॥५॥ हे दैत्येन्द्र ! तब मैंने आपकी भी ऋद्धिको स्मरण किया और उसके देखनेकी इच्छासे यहां तुम्हारे समीप आया हूँ ॥६॥ स्त्रीरत्नसे रहित तुम्हारी इस समृद्धिको देख निश्चय मैं तर्क करता हूँ कि शिवके समान त्रिलोकीमें कोई समृद्धिवाला नहीं है ॥७॥ यद्यपि अप्सरा और नागकन्या आदि तुम्हारे घरमें स्थित हैं किन्तु वे भी निश्चय पार्वतीके समान नहीं हैं ॥८॥ जिसके सौंदर्यरूपी समुद्रमें डूबे हुये ब्रह्माने अपना वीर्य छोड़ा उसके साथ और किस स्त्रीकी उपमा दी जाय ? ॥९॥ तपस्वी भी शिव प्रथम मछलीका रूप धारण करनेवाली जिस पार्वती द्वारा अपनी लीलासे सौंदर्यरूपी वनमें भ्रमाये गये ॥१०॥ सृष्टिके समय अर्थात् पार्वतीकी उत्पत्तिके समयमें ब्रह्माने भी जिसके रूपको वारंवार देखते हुये अप्सराओंको उत्पन्न किया परंतु उसके समान एक भी न हुई ॥११॥ इसीसे स्त्रीरत्नके भोगनेवाले उन शिवकी वह समृद्धि श्रेष्ठ है, हे दैत्येन्द्र ! सब रत्नोंके स्वामी जो तुम हो उनकी समृद्धि वैसी अर्थात् शिव कीसी नहीं है ॥१२॥ ऐसे कहकर उससे पूछकर जब मैं वहांसे चला आया तब वह दैत्योंका राजा पार्वतीके रूप श्रवणसे कामज्वरसे पीड़ित हुआ ॥१३॥ इसके उपरांत उसने विष्णुकी मायासे कुछ मोहित हो शिवजीके लिये सिंहिकाका पुत्र जो राहु है उसको दूत बनाकर भेजा ॥१४॥ राहु जो श्वेत वर्ण चन्द्रमाका तेज है उसके अपने शरीरकी कालिमासे कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान करता हुआ कैलाश गया ॥१५॥ नन्दी द्वारा शिवजीसे निवेदन किया गया वह राहु शिवके समीप गया और शिवजीकी

राहुरुवाच ॥ देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेस्तथा। सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ॥१७॥ श्मशानवासिनो नित्यमस्थिभारवहस्य च। दिगम्बरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥१८॥ अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिका। तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥१९॥ नारद उवाच ॥ वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः। अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥ २० ॥ सिंहास्यः प्रचलज्जिह्वः सज्वालनयनो महान्। ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥ ॥२१॥ स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः। पलायन्नतिवेगेन बहिः स च दधारतम् ॥२२॥ धृत्वा खादितुमारब्धस्तावद्रुद्रेण वारितः। नैवासौ वध्यतामेति दूतोऽयं परवान्यतः ॥२३॥ मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याज सोऽम्बरे। राहुं त्यक्त्वा स पुरुष स्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपत् ॥२४॥ पुरुष उवाच ॥ क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तं क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा। किं भक्षयामिदेवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥२५॥ ईश्वर उवाच॥ भक्षयस्वात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः॥ नारद उवाच॥ स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम्। हस्तपादोद्भवं मांसं शिरःशेषं यथाऽभवत्॥ २६ ॥

भौंहकी संज्ञासे प्रेरणा किया गया वह वचन बोला ॥१६॥ राहु बोले–हे वृषभध्वज ! देवता और सर्पोंसे सेवन योग्य तीनों लोकोंका स्वामी और सब रत्नोंका ईश्वर जो जलंधर है उसकी आज्ञाको सुनो ॥१७॥ श्मशानके वासी और सदा हाडोंके भार उठानेवाले और दिगंबर अर्थात् नग्न ऐसे जो तुम हो, हैमवती अर्थात् हिमाचलकी पुत्री तुम्हारी स्त्री क्योंकर होनी चाहिये ? ॥१८॥ में रत्नोंका स्वामी हूँ और वह स्त्री अर्थात् पार्वती भी स्त्रियोंमें रत्न है अतः वह मेरे ही योग्य है और भीख मांगकर खानेवाले तुम्हारे योग्य नहीं है ॥१९॥ नारद बोले—ऐसे राहु कह रहा था उसी समय शिवजीकी भौहौंके मध्यसे भयानक और तीव्र वज्रके शब्दके समान है शब्द जिसका ऐसा पुरुष प्रगट हुआ ॥२०॥ सिंहोंकासा है मुख जिसका और चलायमान है जीभ जिसकी और ज्वालासहित हैं नेत्र जिसके और ऊपरको हैं केश जिसके और सूखा है शरीर जिसका ऐसा पुरुष दूसरे नृसिहके समान लक्षित होने लगा ॥ २१ ॥ खानेको आते हुये उसे देखकर अतिवेगसे भागता हुआ वह राहु उस पुरुष द्वारा बाहर पकड़ा गया ॥ २२ ॥ पकड़कर जब खाने लगा तब रुद्रद्वारा निवारण किया गया । यह दूत पराये अधीन है अतः यहं मारने योग्य नहीं है ॥२३॥ छोड़ दे, इस वचनको वह पुरुष सुनकर राहुको आकाशमें छोड़ दिया। फिर राहुको छोड़कर उस पुरुषने शिवजीसे प्रार्थना की ॥२४॥ पुरुष बोला, क्षुधा मुझको अत्यन्त बाधा दे रही है और सब भांति मैं क्षुधासे दुर्बल हूँ। हे देवेश ! क्या खाऊँ ? प्रभु मुझको आज्ञा दीजिये ॥२५॥ ईश्वर बोले, तू शीघ्रही अपने हाथ पांवके मांसको भक्षण कर ॥

दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः। उवाच भीमकर्माणं पुरुषं जातविस्मयः ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मे द्वारगः सदा ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ तदाप्रभृति देवस्य द्वारिकीर्तिमुखः स्थितः नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चावृथा भवेत् ॥ २९ ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपतद्बर्बरस्थले। अतः स बर्बरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥३०॥ ततस्स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः। समेत्य सर्वं कथयांबभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं तत् ॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये जलन्धरोपाख्याने दूतसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच। जलन्धरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः। निजगामाशुदैत्यानां कोटिभिः परिवारित ॥१॥ गच्छतोऽस्याग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत्। मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा। व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः। अलक्षितास्तदाजग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपन् ॥ ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां प्रभो। तदस्मद्रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥

नारद बोले, शिवजीसे आज्ञा पाकर वह पुरुष अपने हाथ पांवका मांस ऐसे खाने लगा कि केवल शिरही शेष रह गया ॥२६॥ उसका शिरमात्र शेष रहा देखकर उस समय अत्यंत प्रसन्न शिव विस्मययुक्त हो उस भीमकर्मा पुरुषसे बोले ॥२७॥ ईश्वर बोले, हे कीर्तिमुख! तू सदा मेरे द्वारपर स्थित रह ॥२८॥ नारद बोले, तबसे कीर्त्तिमुख शिवके द्वारपर स्थित है ॥जो प्रथम कीर्तिमुखका पूजन नहीं करता है उसकी पूजा बृथा हो जाती है ॥२९॥ उस पुरुष द्वारा छोड़े हुये राहु बर्बरस्थलमें गिरा इस कारण वह बर्बर हुआ पृथिवीमें प्रसिद्ध हुआ ॥३०॥ उसके बाद लोकमें आपको फिर उत्पन्न मानता हुआ राहु जाकर जलंधरसे उस वृत्तांतको कहने लगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादविरचितायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद बोले, यह सुनकर क्रोधसे व्याकुल है शरीर जिसका ऐसा जलंधर करोड़ों दैत्योंसे युक्त शीघ्रही निकला ॥१॥ जाते हुये इसको शुक्र और राहु दिखाई दिये और मुकुट भूमिमें गिर पड़ा और वेगके कारण स्वयं भी गिरने लगा ॥२॥ दैत्योंकी सेनासे युक्त उस समय सैकड़ों विमानोंसे आकाश ऐसे भर गया जैसे वर्षा ऋतुमें मेघोंसे भर जाता है ॥३॥ उस समय उसके उद्योगको देखकर इन्द्रादिक सब देवता अलक्षित हो शिवजीके समीप गये और प्रार्थना करने लगे ॥४॥ देवता बोले—हे स्वामी! हे प्रभु! क्या आप इन देवताओंकी आपत्तिको नहीं जानते हैं अर्थात् जानते हैं तो उससे हमारी रक्षाके निमित्त इस सागर नन्दनको मारो ॥५॥ यह देवताओंका वचन सुनकर शिवजी हँसकर महाविष्णु

इती देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः । महाविष्णुंसमाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जलन्धरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया । तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच । तवाशंसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः । न मया निहतः संख्ये त्वमेव जहि दानवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्बध्यते मया । देवैः सह स्वतेजोंऽशं शस्त्रार्थं दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखाः देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा । तान्यैक्यमगमन्नीशो दृष्ट्वा स्वं चामुचन्महः ॥१०॥ तेनाकरोन्महादेवो महसां शस्त्रमुत्तमम् । चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् ॥११॥ तेजःशेषेण तदा वज्र च कृतवान्हरिः । तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु । हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः ॥१२॥ तं दृष्ट्वाऽलक्षिता जग्मुर्देवास्सर्वे यथागताः । गणास्समरमायाता युद्धायातित्वरान्विताः ॥१३॥ नन्दी-भवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया । अवतेरुर्गणा वेगात् कैलासाद्युद्धदुर्मदाः ॥१४॥ ततः समभवद्‌युद्धं कैला-सोपत्यकाभुवि । प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्र संकुलम् ॥१५॥ भेरीमृदंगशंखौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः । गजा-श्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥ १६ ॥

जो भगवान् हैं उनको बुलाकर कहने लगा ॥६॥ ईश्वर बोले—हे विष्णुजी ! आपने संग्रामके बीचमें जलंधरको क्यों नहीं मारा? उलटे अपना स्थान वैकुंठ छोड़कर उसके घरमें गये हो ॥७॥ विष्णु बोले, तुम्हारे अंशसे उत्पन्न है इससे तथा लक्ष्मीका भाई है इस कारणसे मैंने उसको संग्राममें नहीं मारा, तुमही दानवका वध करो ॥८॥ ईश्वर बोले यह महातेजस्वी इन अस्त्रोंसे न मारा जायगा अतः देवताओं समेत आप अपने तेजके अंश को शस्त्र बनानेके लिये मुझको दीजिये ॥९॥ नारद बोले इसके बाद विष्णु आदि सब देवता अपने तेजोंको दिये। वे सब तेज इकट्ठे हो गये यह देखकर शिवने अपना भी तेज छोड़ा ॥१०॥ शिवजीने उस तेजके समूहसे ज्वालाओंकी मालासे अतिभयंकर उत्तम शस्त्र सुदर्शन नाम चक्र बनाया ॥ ११ ॥ उसमेसे जो कुछ तेज बना रहा उससे इन्द्रने वज्र बनाया। करोड़ों हाथी घोड़े रथ पायदोंसे युक्त जलंधरको कैलासपर्वत के समीपकी भूमिमें देखा ॥१२॥ उसको देखते ही सब देवता जैसे आये हैं वैसेही छिप-छिपकर चले गये और गण अति शीघ्रतासे युद्धके लिये संग्राममें आये ॥ १३ ॥ उसके पीछे शिवजीकी आज्ञासे नंदी, गणेश, स्वामी कार्त्तिक आदि गण युद्धके लिये दुर्मद हो कैलाससे शीघ्र उतरे ॥१४॥ उसके बाद कैलासके समीप भूमिमें शिवका और दैत्यका शस्त्रास्त्रसे परिपूर्ण घोर संग्राम होने लगा ॥१५॥ वीरोंके आनंद देनेवाले भेरी मृदंग और शंख इनके समूहोंके तथा हाथी घोड़े रथ इनक शब्दोंसे नादित पृथ्वी

शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः । व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् ॥ १७ ॥ निहतैरथ नागाश्वैस्तदा भूमिर्व्यराजत । वज्राहताचलशिरः शकलैरिव संवृता ॥ १८ ॥ प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत् । युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसंजीवनीबलात् ॥ १९ ॥ तं दृष्ट्वा व्याकुलीभूता गणाः सर्वे भयान्विताः । शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम् ॥२०॥ अनुरुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीव भीषणा । तालजंघा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ॥२१॥ सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयंती महासुरान् । भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः ॥२२॥ विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यगणांस्तदा। अम्लानवदना हर्षान्निर्जघ्नुर्युद्धदुर्मदाः॥२३॥ अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता । वायुवेगेनाहतेव प्रकीर्णा तृणसंहतिः ॥२४॥ भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वाऽमर्षयुता ययुः । निशुम्भशुम्भसेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥२५॥ त्रयस्ते वरयामासुर्गणसेना महाबलाः। मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥२६॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः । रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनां प्रकम्पयन् ॥२७॥

कांपने लगी ॥१६॥ शक्ति, तोमर, बाणोंके समूह, मूसल, प्रास और पट्टिश शस्त्रास्त्रोंसे व्याप्त आकाश ऐसा शोभायमान हुआ मानो कि, उल्काओं से आच्छादित है ॥१७॥ मारे हुये जो रथ, हाथी, घोड़े हैं उनसे भूमि ऐसी शोभित हुई कि मानो वज्रसे गिराये हुये पर्वतके शिखरोंके खण्डोंसे आच्छादित हो रही है ॥१८॥ शिवके गणोंसे मारे गये दैत्योंको उस युद्धमें शुक्राचार्य मृतसंजीवनी विद्याके बलसे बारंबार जिलाने लगे ॥१९॥ उसको देख व्याकुल और भयभीत सब गण देवदेव जो शिव हैं उनसे उस शुक्राचार्यकी करतूति को कहने लगे ॥२०॥ उसके बाद रुद्रके मुखसे अति भयंकर ताड वृक्षके समान जांघें वाली, गुफाके समान मुख वाली और स्तनोंसे पीड़ित किये हैं वृक्ष जिसने ऐसी कृत्या प्रगट-हुई ॥२१॥ वह युद्धभूमिमें आकर बड़े-बड़े असुरोंको भक्षण करती हुई शुक्राचार्यको अपनी भगमें धारण करके अन्तर्धान हो आकाशको चली गई ॥ २२ ॥ तब शुक्रको पकड़ा हुआ देखकर प्रसन्न मुख गणयुद्धमें दुर्मद हो दैत्योंकी सेनाको हर्षसे मारने लगे ॥ २३ ॥ उसके बाद गणोंके भयसे पीड़ित दैत्योंकी सेना ऐसे छिन्न-भिन्न हुई जैसे पवनके वेगसे ताडित तृणोंका समूह बिखर जाता है ॥२४॥ गणोंके भयसे भगी हुई सेनाको देखकर शुंभ और निशुंभ दोनों सेनापति और बलवान् कालनेमि ये तीनों क्रोधयुक्त हो गये ॥२५॥ ये तीनों महाबली वर्षाऋतुमें मेघके समान बाणकी वर्षाको छोड़ते हुए गणोंकी सेनाको रोकने लगे ॥२६॥ उसके बाद वे दैत्यके शरसमूह टीडी दलके समान आकाश और सब दिशा ोंको ढँक लिया और गणोंकी सेनाको कम्पायमान कर दिया ॥ २७ ॥ सैकड़ों बाणोंसे

गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः । वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायन्तः किंचन ॥२८॥ पतिताः पात्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः ॥ त्यक्त्वा संग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखाभवन् ॥२९॥ ततश्च भग्नं स्वबलं विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्तिकेयाः । त्वरान्विता दैत्यवरान्विषह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ नारद उवाच ॥ ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान् । अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः ॥१॥ नन्दिनं कालनेमिश्च शुंभो लम्बोदरं तथा । निशुम्भः षण्मुखं वेगादभ्यधावत दंशितः ॥२॥ निशुम्भः कार्त्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः । हृदि विव्याध वेगेन मूर्छितः स पपात ह ॥३॥ ततः शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राह रोषितः । तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥४॥ ततो नन्दी शरव्रातैः कालनेमिमविध्यत । सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुः सारथिमच्छिनत् ॥ ५ ॥ कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः । तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्बली ॥ ६ ॥ स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः । अद्रेः शिखरमामुच्य शैलाद्रिं सोऽप्यपातयत् ॥७॥

वेधे गये, इसीसे रुधिरकी, धाराको छोड़ते गण वसंत ऋतुमें ढाकके वृक्षके समान लाल रंगके सिवाय कुछ न जाने जाते थे ॥२८॥ उस समय गिरे और गिराये गये छिन्न-भिन्न सब गण संग्राम भूमिको छोड़कर भाग गये ॥२९॥ उसके बाद शैलादि अर्थात् नंदी, गणेश और स्वामीकार्त्तिक अपनी सेनाको हारी हुई देख क्रोधयुक्त हो हठसे दैत्यवरोंको रोकने लगे ॥३०॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायां भावार्थबोधिनीसमाख्यायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३ ॥ नारद बोले—वे दैत्य नंदी, इभमुख, अर्थात गणेश और षण्मुख अर्थात् कार्त्तिकेय इत्यादि गणोंको देख क्रोधसे द्वंद्वयुद्धके लिये दौड़े ॥१॥ अब द्वंद्वयुद्ध वर्णन करते हैं—कालनेमि दैत्य नंदीसे युद्ध करनेको आया और शुम्भ गणेशजीसे और निशुंभ स्वामी कार्तिकेयसे, ये सब कवच पहने हुये इन सबोंसे युद्ध करनेको वेगसे दौड़े ॥२॥ निशुंभ पांच बाणोंसे स्वामी कार्त्तिकके मयूरको वेगसे हृदयमें वेधा और वह मोर मूर्च्छित ,होकर गिरा ॥३॥ उसके बाद कार्त्तिकेय क्रोधित हो जबतक शक्तिको ग्रहण करे तबतक निशुंभने वेगसे अपनी शक्तिद्वारा उन्हें गिरा दिया ॥४॥ उसके बाद नंदीने बाणोंके समूहसे कालनेमिको वेधा और सात बाणोंसे घोड़ोंको तथा पताकाको और धनुषको काटा, कालनेमिने भी क्रोधित होकर नन्दीका धनुष काटा तब वह बलवान् उस धनुष को त्यागकर उस कालनेमिकी छातीमें शूल मारा ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ शूलसे भेदन किया गया है हृदय जिसका और मारा गया घोड़ा और सारथी जिसके ऐसा जो कालनेमि है वह पर्वत शिखरको उखाड़कर नंदीको गिराने लगा

अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ। युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥८॥ गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा। सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥९॥ ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि बाणवृष्ट्या गणाधिपम्। मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १० ॥ मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चलितुं न शशाक ह। लम्बोदरः समुत्तीर्य पदातिरभवत्पुनः ॥ ११ ॥ ततो लंबोदरःशुम्भं हत्वा परशुना हृदि। अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥ २ ॥ कालनेमिर्निशुंभश्चाप्युभौ लंबोदरं शरैः। युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥१३॥ तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः। अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥ १४ ॥ कूष्माण्डा भैरवाश्चापि वेतालायोगिनीगणाः। पिशाचा योगिनीसंघा गणाश्चापि तमन्वयुः ॥ १५ ॥ ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः। निनादैर्भारिता सर्वा पृथिवी समकम्पत ॥ १६ ॥ ततो भूताभ्यधावंत भक्षयन्ति स्म दानवान्। उत्पतन्त्यापतन्ति स्म ननृतुश्च रणाङ्गणे ॥१७॥ नन्दी च कार्तिकेयश्च समाश्वस्तौ त्वरान्वितौ। निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः ॥ १८ ॥ छिन्नभिन्नाहतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तदा। व्याकुला साऽभवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥ १९ ॥

।।७।। तदनन्तर शुंभ और गणेश जिनके रथ और मूसा वाहन हैं ऐसे दोनों युद्ध करते हुए आपसमें शरोंके समूहसे भेदन करने लगे ।।८।। तब गणेशजीने बाणसे शुंभको हृदयमें वेधन करते हुये तीन बाणोंसे उसके सारथीको भूमिमें गिरा दिया ।।९।। उसके बाद शुंभ अति क्रोधित हो बाणोंकी वर्षासे गणेशको और तीन बाणोंसे मूसेको बेधकर मेघके समान गर्जा ।।१०।। हे राजा! बाणोंसे विदीर्ण अंग वाला मूसा जब न चल सका तब गणेशजी उतरकर पांवसे चलने लगे ।।११।। तदनंतर गणेशजी छातीमें फरसा मारकर शुंभको पृथ्वीमें गिरा दिया और फिर मूसेपर चढ़े ।।१२।। कालनेमि और निशुंभ दोनों एक साथही गणेशजीको क्रोधकर बाणोंसे मारा जैसे अंकुशसे कोई हाथी को मारते हैं ।।१३।। तब महाबली वीरभद्र उनको पीड़ित देख करोड़ भूतों समेत उसपर दौड़े ।।१४।। कूष्माण्ड भैरव वेताल योगिनियोंके गणपिशाच योगिनियोंके समूह और गण ये सब वीरभद्रके साथ चले ।। १५ ।। उसके बाद किलकिला शब्दोंसे और सिंहनादोंसे तथा अन्य शब्दोंसे भरी हुई सब पृथ्वी कांपने लगी ।।१६।। तदनंतर भूत दौड़े और दानवोंको भक्षण करने लगे, उछलते थे, कूदते थे और रणभूमिमें नाचते थे ।। १७ ।। नन्दी और कार्त्तिकेय स्वस्थ होकर शीघ्रतासे रणमें दैत्योंको अविच्छिन्न बाणोंके समूहसे मारने लगे ।।१८।। छिन्न भिन्न और-

प्रतिध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः । रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥२०॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादाः शंखभेरीरवास्तथा । अभवन्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥ जलन्धरशरव्रातैर्नीहारस्य तलैरिव । द्यावापृथिव्योराच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥२२॥ गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः । वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥२३॥ कार्त्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः । जुघूर्ण शक्तिनिर्भिन्नः किंचिद्व्याकुल मानसः ॥२४॥ ततः क्रोधपरीताङ्गः कार्त्तिकेयं जलन्धरः । गदया ताडयामास स च भूमितलेऽपतत् ॥ २५ ॥ तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले । ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाच्छिनत् ॥२६॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् । सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥ २७ ॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येंद्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् । गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥२८॥ अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः । ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥२९॥ वीरभद्रस्ततस्तस्य हयान्बाणैरपातयत् । धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः ॥ ३० ॥

मारे गये, गिरे हुये तथा खाये हुये ऐसे दैत्योंसे मलिन है मुख जिसका ऐसी सेना उस समय व्याकुल हुई ।। १९ ।। तब वह बली सागरनन्दन अपनी सेनाका गणोंसे विध्वंस देख बड़ी पताकायुक्त रथमें बैठ गणोंके सम्मुख आये ।।२०।। हाथी, घोड़े और रथोंके शब्द तथा शंख और भेरीका शब्द और दोनों सेनाओंका सिंहनाद उस समय होने लगा ।।२१।। जलंधरके बाण समूहोंसे आकाश और पृथ्वीका मध्य ढँक गया जैसे कि कुहरके पुंजसे आच्छादित हो जाता है ।।२२।। जलंधर पांच बाणों से गणेशको, नवसे नंदीको और बीस बाणोंसे वीरभद्रको बेधकर मेघके समान गर्जने लगा ।।२३।। तब कार्त्तिकेयने दैत्यको अतिशीघ्र शक्तिसे बेधा। शक्तिके लगनेसे कुछ व्याकुल मन हो घूमने लगा ।।२४।। उसके बाद क्रोधसे व्याप्त है अंग जिसका ऐसा जलंधर कार्त्तिकेयको गदासे मारा तब वे तो भूमिमें गिर गये ।।२५।। ऐसेही नंदीको वेगसे भूमिमें गिरा दिया तब गणेशने क्रोधित हो उसकी गदाको फरसे से काट दिया ।। २६ ।। वीरभद्र उस दानवके हृदयमें तीन बाण मारे और सात बाणोंसे उसके घोड़ों, उसकी पताका, धनुष और छत्रको काट दिया ।।२७।। उसके बाद दैत्यराजने अतिक्रोधित हो दारुण शक्ति उठाकर गणेशको गिरा दिया और फिर दूसरे रथमें चढा ।।२८।। उसके बाद क्रोधित हो वीरभद्र दौड़ा और सूर्यके समान है कांति जिनकी ऐसे दोनों परस्पर युद्ध करने लगे ।।२९।। उसके बाद वीरभद्र बाणोंसे उसके घोड़ोंको गिरा दिया और धनुषको काट दिया, तब दैत्येन्द्र परिघ अर्थात् लोहांगी लेकर दौड़ा ।।३०।। नारद बोले, वह शीघ्र ही जाकर परिघसे वीरभद्रके मस्तकमें मारा वह वीरभद्र भी शिर

नारद उवाच ॥ स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्द्धनि । स चापि वीरः प्रविभिन्न मूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् । आगमंस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥ १ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः । अभ्ययाद्वृषभारूढः संग्रामं प्रहसन्निव ॥ २ ॥ रुद्रमाया-न्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः । निवृत्ताः संगरे दैत्यान्निजघ्नुः शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥ दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः । कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥४॥ अथ जालन्धरो दैत्यान्विद्रुतान्प्रेक्ष्य सङ्गरे । रोषादधावच्चण्डीशं मुञ्चन्बाणान्सहस्रशः ॥५॥ शुम्भो निशुम्भोऽश्वमुखः कालनेमिर्बलाहकः । खड्गरोमा प्रचण्डश्च घस्मराद्याः शिवं ययुः ॥६॥ बाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः । बाणजालमवच्छिद्य स्ववाणै-रावृतं नभः ॥ ७ ॥ दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितान्करोत्तदा । प्रचण्डबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥ ८ ॥ खड्गरोम्णः शिरः कोपात्तदा परशुनाऽच्छिनत् । बलाहकस्य च शिरः खट्वांगेनाकरोद्द्विधा ॥९॥ बद्ध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि । वृषशृङ्गहताः केचित्केचिद्बाणैर्निपातिताः न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिताइव १०

फूटनेसे रुधिरको गिराता हुआ पृथ्वीमें गिरा ।।३१।। इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादकृतायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।। नारद बोले, वीरभद्रको गिरा हुआ देख रुद्रके गण भयसे रणको छोड़ पुकार करते हुये शिवके समीप गये ।।१।। इसके बाद कोलाहल सुनकर चन्द्रशेखर वृषभपर चढ़ हँसते हुये संग्रामको गये ।।२।। रुद्रको आते हुये देख गण सिंहनाद करके फिर बाणोंकी वर्षासे दैत्योंको मारने लगे ।।३।। दैत्य शिवजीको भयंकर देख ऐसे भागने लगे जैसे कार्त्तिक व्रत करनेवालेको देख उसके भयसे पाप भाग जाते हैं ।।४।। इसके बाद जलंधर दैत्योंको भागे हुये देख, संग्राममें क्रोधसे हजारों बाणोंको छोड़ता हुआ शिवजीके ऊपर दौड़ा ।।५।। शुंभ, निशुंभ, अश्वमुख, कालनेमि, बलाहक, खड्गरोमा, प्रचण्ड और घस्मर आदि दैत्य शिवके ऊपर दौड़े ।। ६ ।। शिवजीने गणोंकी सेनाको बाणरूपी अंधकारसे ढँकी हुई देख दैत्योंके बाणजालको काट अपने बाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया ।।७।। और उस समय दैत्योंको बाणरूपी बबूलों से व्याकुल कर दिया और प्रचंड बाणोंके समूहसे पृथ्वीमें गिरा दिया ।।८।। खड्गरोमा नाम राक्षसके शिरको क्रोधसे फरसा से काट दिया और बलाहक नाम दैत्यके शिरको खट्वांगसे दो टूक कर दिया ।।९।। और घस्मर दैत्यको पाशसे बांधकर पृथ्वीमें गिरा दिया, कुछ बैलके सींगोंसे और कुछ बाणों से मारे गये। दैत्य सिंहसे पीडित हाथियोंके समान संग्राममें ठहर न सके ।।१०।। उसके

ततः कोपपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलन्धरः । आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः ॥ ११ ॥ जलन्धर उवाच ॥ युद्ध्यस्वाद्य मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव । यत्किंचिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा दशभिर्बाणैर्जघान वृषभध्वजम् । स तान्प्राप्तान्छितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसञ्छिवः ॥१३॥ ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेदसप्तभिः ॥१४॥ सच्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान् । अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदां बाणैर्द्विधाऽकरोत् ॥१५॥ तथापि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रं जिघांसया । तावच्छिवेन बाणौघैः क्रोशमात्रमपाकृतः ॥१६॥ ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम् । ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥ १७॥ ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ तालवेणुमृदंगाद्यान्वादयंति स्म चापरे ॥१८॥ तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुद्रो नादविमोहितः । पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥ १९ ॥ एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः । कामार्त्तः स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥ २० ॥ युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ । दशदोर्दण्डपंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ २१ ॥ महावृषभमारूढः स बभूव जलंधरः । अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा । अभ्यायया सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥ २२ ॥

बाद क्रोधसे व्याप्त है शरीर जिसका ऐसे जलंधरने वज्रके समान शब्दोंसे संग्राममें रुद्रको बुलाया ॥ ११ ॥ जलंधर बोला,– अब मेरे साथ युद्ध करो इनको मारनेसे क्या प्रयोजन है! जटाधारी ? तुममें जो कुछ बल हो वह दिखावो ॥१२॥ नारद बोले,–ऐसे कहकर दश बाणोंसे शिवको मारा वे शिव आये हुये उन बाणोंको अपने पैने बाणोंसे हँसकर काट दिये ॥१३॥ उसके बाद घोड़ाको ध्वजाको और छत्रको सात बाणोंसे काटा ॥१४॥ कट गया है धनुष जिसका और रथ सहित ऐसे जलंधर वेगसे गदाको उठाकर शिवके ऊपर दौड़ा तब शिवजीने उसकी गदाको बाणों से दो खंड कर दिया ॥१५॥ वह घूंसा उठाकर मारनेकी इच्छासे शिवजीके पास गया तभी शिवजीने बाणोंके समूहसे उसको एक कोस भर हटा दिया ॥ १६ ॥ उसके बाद जलंधरदैत्य शिवजीको अधिक बलवान् जानकर मोहित करनेवाली अद्भुत गांधर्वी मायाको उत्पन्न करने लगे ॥१७॥ उसके बाद गंधर्व गान करने लगे, अप्सराओंके गण नाचने लगे तथा और सब ताल वेणु मृदंग आदि बाजोंको बजाने लगे ॥१८॥ बड़ा आश्चर्य देखकर रुद्र नादसे मोहित हो हाथोंसे गिरे हुये शस्त्रोंको भी न जाना ॥१९॥ जलंधर दैत्य रुद्रको नृत्यगानकी ओर एकाग्र मन हुआ जानकर कामसे पीड़ित हो जहां गौरी स्थित थीं वहीं शीघ्र गये ॥ २० ॥ महाबली जो शुंभ निशुंभ हैं उनको युद्धमें रखकर आप दशभुज, पांचमुख और तीन नेत्र तथा जटाओंको धारण कर शिवका रूप धारण किया ॥२१॥ वह जलंधर

यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः । तावत्स वीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाभवत्तदा ॥२३॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला । जगामान्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसम् ॥२४॥ तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव । जवेनागात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः ॥२५॥ पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मार मनसा तदा । तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ॥२६॥ पार्वत्युवाच ॥ विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् । तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे । नान्यथाऽसौ भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ॥२८॥ नारद उवाच ॥ जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥ अथ रुद्रश्च गन्धर्वानुगतः संगरे स्थितः ॥२९॥ अन्तर्द्धानगतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥३०॥ ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा । स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये शिवजलंधरसंग्रामो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ विष्णुर्जालंधरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् । पातिव्रत्यस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥ १ ॥

बड़े बैलपर चढ़े हुए पीछे भवकी वल्लभा पार्वती और शिवजीको आते देखा। सखियोंके मध्यसे उठकर उनके दर्शनके मार्गमें आई ॥२२॥ वह दैत्योंका राजा सुंदर है अङ्ग जिसका ऐसी पार्वतीको देखा वीर्यको छोड़ा और उसका अङ्ग जड़ हो गया ॥२३॥ तद्नंतर गौरी उसको दानव जान भयसे व्याकुल हो अन्तर्हित होकर अतिशीघ्र उत्तरदिशामें मानसरोवरको गयीं ॥२४॥ उसके बाद दैत्य क्षणभरमें बिजलीके समान जो पार्वती हैं उसे न देखकर वेगसे युद्धमें फिर आया। जहां शिवजी विद्यमान थे ॥२५॥ पार्वती भी उस समय मनमें विष्णुको स्मरण करने लगीं। उसी समय विष्णुको समीप में ही बैठा देखा ॥२६॥ पार्वती बोलीं, हे विष्णु ! जलंधर दैत्यने जो अद्भुत कर्म किया क्या इस दुष्टका वह काम आपको विदित नहीं है? ॥२७॥ श्रीभगवान् बोले–उसके द्वारा दिखाये गये मार्ग (अर्थात् छलसे वेष बनाने का मार्ग) हम भी अपनायेंगे अर्थात् जैसा छल उसने किया है ऐसा हम भी उसकी स्त्रीसे करें अन्यथा पतिव्रता धर्मसे रक्षित वह मारने योग्य न होगा ॥२८॥ नारद बोले–विष्णु ऐसा कहकर फिर जलंधरके पुरको गये और रुद्र गंधर्वसमेत संग्राममें स्थित हुये ॥२९॥ तब वे शिव मायाको अन्तर्ध्यान हुई देख बोधको प्राप्त हुये ॥३०॥ उसके बाद शिव मनमें विस्मित हो क्रोध करके युद्धके लिये फिर पर जलंधर गये, वह दैत्य भी फिर रणमें आये हुये शिवको बाणोंके समूहसे आच्छादित करने लगा ॥३१॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादविरचितायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारद बोले–विष्णु उस जलंधरके

अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह । भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥२॥ कृष्णप्रसूनभूषाढचक्र-व्यादगणसेवितम् । दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाप्यावृतं तदा॥३॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना ह । प्रबुद्धा सा तदा बाला दुःस्वप्नं प्रविचिन्वती ॥ ४ ॥ ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः । तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदन्ती भयविह्वला ॥५॥ कुत्रचिन्नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु । ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥६॥ सत्रस्ता साऽभ्रमद्बाला नालभत्कुत्रचित्सुखम् । वनाद्वनान्तरं याता नववेदात्मनः सुखम् ॥७॥ ततः सा भ्रमती बाला ददर्शातीव भीषणौ । राक्षसौ सिंहवदनौ दष्टानयनं भीषणौ ॥ ८ ॥ तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनप-राऽभवत् । ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्कण्ठमावृत्य निजबाहुलतां भयात् । मुने मां रक्ष शरणमागतास्मीत्यभाषत ॥ १० ॥ मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा । हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ तदा ॥ ११ ॥ तौ हुंकारभयत्रस्तौ. दृष्ट्वा तौ विमुखौ गतौ । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

नगरमें जाकर वृन्दाके पतिव्रता धर्म को भंग करनेकी मति की ।। १ ।। इसके बाद वृन्दा देवी स्वप्नमें पतिको भैंसेपर चढ़ा और तेल लगाये नंगे शरीर में देखा ।। २ ।। और काले फूलकी माला ने कच्चे मांसके खानेवाले जीवोंसे सेवित और दक्षिण दिशाको जाते हुये मूंड मूंडाये अंधकारसे घिरा हुआ ऐसा अपने पतिको स्वप्नमें देखा ।। ३ ।। आप समेत अपने पुरको सहसा समुद्रमें डूबा हुआ देखा । उस समय जगी हुई, वह इस स्वप्नको शोचने लगी ।।४।। उदय हुए सूर्यको छिद्रोंसे युक्त और निस्तेज देखा । इसे अनिष्ट जानकर रोदन करने लगी और भयसे व्याकुल हो गई ।। ५ ।। पुर और अटारी आदिकी भूमिमें कहीं भी सुखको न प्राप्त हुई तो दो सखियोंको साथ लेकर नगरके समीप जो बाग है उसमें आई ।।६।। भयभीत वह बाला भ्रमण करती हुई कहीं भी सुखको न प्राप्त हुई एक बागसे दूसरे बागमें गई परंतु अपना सुख न देखा ।।७।। उसके बाद भ्रमण करती हुई वह बाला सिंहका है मुख जिनका और डाढैं तथा नेत्रोंसे भयंकर ऐसी डरावनी सूरतके दो राक्षसोंको देखा ।।८।। उनको देख अतिव्याकुल हो वहांसे भाग खड़ी हुई । उसी समय शांतरूप मौन धारण किये हुये शिष्य समेत बैठे हुये तपस्वी-को देखा ।।९।। उसके बाद अपनी बांह उनके भयसे उस तपस्वीके गलेमें डाल कर कहने लगी हे मुनि ! मैं तुम्हारी शरणमें आई हूँ मेरी रक्षा करो ।। १० ।। तब मुनिने राक्षसोंसे खदेरी गई उस वृन्दाको व्याकुल देख उन दोनों भयानक राक्षसोंको हुंकारसे भगा दिया ।।११।। हुंकार के भयसे डरकर भाग गये उन राक्षसोंको देख वृन्दा दण्डवत्प्रणाम करके वचन बोली ।। १२ ।। वृन्दा

वृन्दोवाच । रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्कृपानिधे । किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशम्यताम् ॥१३॥ जलंधरो हि मे भर्ता रुद्रयोद्द्धुं गतः प्रभो । स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवेक्षत । तावत्कपी समायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ । गत्वा क्षणार्द्धादागत्य वानरावग्रतः स्थितौ ॥१६॥ शिरःकबंधहस्तौ च दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा । पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ १७ ॥ कमण्डलुजलं सिक्त्वा मुनिनाश्वासिता तदा । स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो । स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम् ॥ १९ ॥ येन देवाः सगन्धर्वा निर्जिता विष्णुना सह । स कथं तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥२० ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत्॥ वृन्दोवाच॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् । त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत ॥ मुनिरुवाच ॥ नायं जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि ॥ २२ ॥

बोली–हे कृपानिधि ! तुमने इस घोर भयसे मेरी रक्षा की अब मैं कुछ प्रार्थना करना चाहती हूँ, वह कृपा करके आप सुनिये ॥१३॥ हे प्रभो ! मेरा पति जलंधर रुद्रके साथ युद्ध करने को गया है वे वहां युद्धमें कैसे हैं । हे उत्तम व्रत धारी महाराज ! यह मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ नारद बोले–मुनि उसके वचनको सुन कृपा करके ऊपरको देखने लगे, इतनेमें दो वानर आकर उस मुनीश्वरको नमस्कार करके आगे खड़े हो गये ॥१५॥ उन ऋषिकी भौंहकी संज्ञासे प्रेरित किये गये दो कपि आकाशको गये और जाकर आधेही क्षणमें फिर वे दोनों वानर मुनिके आगे स्थित हो गये ॥१६॥ जलंधरका शिर और कबंध है हाथोंमें जिनके ऐसे उन वानरोंको देख वृन्दा पतिके कष्टसे दुःखित हो मूर्च्छित होकर भूमिमें गिरी ॥१७॥ कमंडलुका जल छिड़क वह उस समय मुनिसे आश्वासित अर्थात् चैतन्य होकर अपने माथेको पतिके माथेपर रखकर दुःखी हो रोदन करने लगी ॥१८॥ वृन्दा बोली–हे प्रभु ! जो तुम पहले हास्य विनोद के सुखमें आनंदित करते, वही तुम मुझ निरपराधिनी से आज क्यों नहीं बोलते हो ॥१९॥ तुमने विष्णुसहित सब देवता और गंधर्व जीते और तुम तीनों लोकोंके जीतनेवाले होकर अब तपस्वीसे कैसे मारे गये ॥२०॥ नारद बोले,– उस समय वृन्दा ऐसे रोदन करके उस मुनिसे बोली । वृन्दा बोली–हे कृपानिधि मुनिश्रेष्ठवर ! मेरे पति को लाओ, हे मुनि ! तुमही इसके जिलानेमें समर्थ हो ऐसा मेरा विश्वास है ॥ २१ ॥ नारद बोले–यह

तथापि त्वत्कृपाविष्टो येन संजीवयाम्यहम् ॥ नारद उवाच॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विप्रस्तावत्सागरनन्दनः॥२३॥ वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुंबे प्रीतमानसः । अथ वृन्दापि भर्त्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥ २४ ॥ रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥ नारद उवाच॥ कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ॥ २५ ॥ निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥ २६ ॥ ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापसः । यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥ २७ ॥ तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः । त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् ॥२८॥ भ्रम सर्वेश्वरोऽनेन यस्ते शिष्यत्वमागतः । इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्य वाहनम् ॥२९॥ विष्णुना वार्यमाणापि तस्यामासक्तचेतसा ॥३०॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोऽवगुण्ठितः ॥ तत्रैव तस्थौ मुनिसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये वृन्दोपाख्याने विष्णु साक्षात्कारो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

उसका वचन सुन हँसकर मुनि बोले । मुनि बोले–रुद्रसे संग्राममें मारे गमे इसको मेरी जिलानेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ २२ ॥ तो भी तेरे ऊपर जो कृपा है उससे युक्त मैं इसे जिलाता हूँ । नारद बोले,–ऐसे कहकर ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया, उसी समय वह सागरनन्दन जीवित हुआ ॥२३॥ वृन्दाको आलिंग करके प्रसन्न मन हो चुंवन करता हुआ अनंतर वृन्दा भी पतिको देख मनमें हर्षित हुई ॥ २४ ॥ उस बागमें रहकर उसने पतिसमेत बहुत दिनोंतक बिहार किया । नारद बोले,–एक बार भोगके अन्तमें उसी विष्णु को दखा ॥२५॥ फिर क्रोधित हो धमकाकर वृन्दा बोली ॥ वृन्दा बोली,–हे हरि ! पराई स्त्रीके साथ भोग करनेवाले तुम्हारे शीलको धिक्कार है । प्रत्यक्षमें तपस्वी रूपके धारण करने वाले तुम भलीभांति मायावी जाने गये और तुम मायासे जिन्हें मुझको दिखाये वे तुम्हारे द्वारपाल हैं ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ वेही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्रीको हरेंगे और तुम भी स्त्रीके दुःखसे दुःखी हो वनमें वानरोंकी सहायता प्राप्त करोगे ॥ २८ ॥ सर्वेश्वर तुम भी भ्रमण करोगे और यह जो तुम्हारे शिष्य हैं, ये मृगरूप होयँगे ऐसा कहकर वृन्दा उस वृन्दामें आसक्त है मन जिनका ऐसे विष्णुसे वारण की गई भी अग्निमें प्रवेश कर गई ॥२९॥ ॥३०॥ उसके बाद हरि वृन्दाका बार-बार स्मरण करते हुए उसकी चिताकी भस्ममें लेटते हुये वहीं स्थित रहे और मुनियों तथा सिद्धोंके समूहसे समझाने पर भी शांतिको न प्राप्त हुये ॥ ३१ ॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनय-श्रीमत्पंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारद बोले उसके

नारद उवाच ॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् । चकार मायया गौरीं त्र्यंबकं मोहयन्निव ॥ १ ॥ रथोपरि च तां बद्ध्वा रुदन्तीं पार्वतीं शिवः । निशुंभप्रमुखाद्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः ॥ २ ॥ गौरीं तथा विधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः । अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥ ततो जलन्धरो वेगात् त्रिभिर्विव्याध सायकैः । आपुंखमग्रैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे ॥४॥ ततो जज्ञे सतां मायां विष्णुना संप्रबोधितः । रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥ ५ ॥ तस्यातीव महारौद्र रूपं दृष्ट्वा महासुराः । न शेकुः संमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशोदश ॥ ६ ॥ ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुम्भनिशुम्भयोः । मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्या वध्यौ भविष्यथः ॥ ७ ॥ पुनर्जलन्धरो वेगाद्ववर्ष निशितैः शरैः । बाणान्धकारसञ्छन्नं तदा भूमितलं महत् ॥८॥ यावद्रुद्रश्च चिच्छेद तस्य बाणचयं जवात् । तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली॥९॥ वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणाङ्गणात् । रुद्रेणाकृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥१०॥ ततः परम संक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुधरः । चक्रं सुदर्शनं वेगाच्चिक्षेपादित्यवर्चसम् ॥११॥ प्रदहन्रोदसी वेगात्पपात वसुधातले । जहार तच्छिरः कायान्महदायतलोचनम् ॥१२॥

बाद जलंधर रुद्रका अद्भुत पराक्रम जान शिवजीको मोहित करता सो मायासे गौरीको रचा ॥१॥ रथके ऊपर बँधी हुई उस गौरीको शिवजी रोती हुई देख निशुंभ आदि दैत्योंसे मारी जाती देखते हुये ॥२॥ गौरीकी वह दशा देख शिवजी उद्विग्नमन हो अपने पराक्रम को भूलके नीचा शिरकर स्थित हुये ॥३॥ उसके पीछे जलंधर फोंक पर्यन्त घुसे हुये तीन बाणोंसे शिवजीके शिरमें छातीमें और पेटमें वेगसे वेधा ॥ ४ ॥ उसके पीछे विष्णुसे चेताये शिव उस मायाको जानते हुये और भयानक रूप धारण करके ज्वालाकी माला अर्थात् ज्वालाके समूहसे अतिभयंकर हुये ॥५॥ उनका अत्यन्त महाभयानक रूप देखकर दैत्य सम्मुख स्थित होनेको न समर्थ हुये किन्तु वे दशों दिशाओंको भाग गये ॥ ६ ॥ उसके पीछे रुद्र उन शुंभ निशुंभ दोनों दैत्योंको शाप देते हुये कि तुम मेरे युद्धसे भागे हो इस कारण गौरीसे मारने योग्य होगे ॥७॥ फिर जलंधर वेगसे पैने बाणोंकी वर्षा जो है उसे करते हुये तब भूमंडल बाणरूपी बड़े अंधकारसे आच्छादित हुआ ॥८॥ जैसे शिवजी उसके बाणोंके समूहको वेगसे काटते हुये वैसेही वह बली परिघसे बैलको मारा ॥ ९ ॥ उस प्रहारसे रणभूमिसे लौटा हुआ वह बैल रुद्र से खेंचा भी गया परंतु रणभूमिमें न ठहरा ॥१०॥ उसके पीछे भयानक शरीर धारण करनेवाले शिव अति क्रोधित हो सूर्यके समान है तेज जिसका एसे सुदर्शन चक्रको वेगसे चलाने लगे ॥ ११ ॥ आकाश पृथ्वीको प्रज्वलित करता हुआ वह वेगसे पृथ्वीतलमें

रथात्क यः पपातास्य नादयन्वसुधातलम् । तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुद्रे लयमागतम् ॥ १३ ॥ वृन्दादेहोद्भवं तेजस्तद्गौर्यां लयमागतम् । अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षेणोत्फुल्ललोचनाः ॥१४॥ प्रणम्य शिरसा देवं शशंसुर्विष्णु-चेष्टितम् ॥ देवा ऊचुः ॥ महादेव त्वया देवा रक्षिताः शत्रुजाद्भयात् ॥ १५ ॥ किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे । वृन्दालावण्यसंभ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥ १६॥ रुद्र उवाच ॥ गच्छध्वं शरणं देवा विष्णो-र्मोहापनुत्तये। शरण्यां मोहिनीं मायां सा वः कार्यं करिष्यति ॥ १७ ॥ नारद उवाच॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः सह भूतगणैस्तदा । देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥ १८॥ देवा ऊचुः ॥ यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः । यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥१९॥ या हि त्रयोविंशतिभेद शब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा । यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवास्तु मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २० ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन् । न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥

गिरता और बड़े विशाल हैं नेत्र जिसमें ऐसे जो जलंधरका शिर है उसी शरीरसे हर लिया ॥१२॥ इस जलंधरका शरीर पृथ्वीको शब्दायमान करता हुआ रथसे गिरा और देहसे जो तेज निकला सो रुद्रमें लीन हो गया ॥१३॥ वृन्दाके देहका जो तेज था वह गौरीमें लीन होगया इसके पीछे ब्रह्मादिक सब देवता हर्षसे प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके ऐसे हुये ॥१४॥ फिर वे शंभुको प्रणाम कर विष्णुका वृत्तान्त कहा ॥ देवता बोले–हे महादेव! तुमसे देवता गण शत्रुसे उत्पन्न भय द्वारा रक्षा किये गये ॥१५॥ कुछ और भय उत्पन्न हुआ है उसमें अब हम क्या करें ? वह यह है कि वृन्दाकी सुन्दरतासे संभ्रममें पड़े विष्णु मोहित हो वहीं अर्थात् वृन्दाकी चिताभस्ममें पड़े हैं ॥१६॥ रुद्र बोले––हे देवताओ! विष्णुका मोह दूर करनेके निमित्त शरण जाने योग्य-जो मोहिनी माया है उसकी शरणमें जाओ वह तुम्हारा कार्य करेगी ॥१७॥ नारद बोल, ऐसे कहकर शिवजी तब सब गणों सहित अन्तर्धान हो गये और देवता भक्त हैं प्रिय जिसको ऐसी जो मूलप्रकृति अर्थात् माया है उसकी स्तुति करन लगे ॥ १८ ॥ देवता बोले, जिससे उत्पन्न सत्व, रज, तम, गुण, सृष्टि, पालन और संहारके करनेवाले हैं और जिसकी इच्छास संसारकी उत्पत्ति और नाश होता है उस मूल प्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं ॥१९॥ जो तेईस भेदोंसे उच्चारण की जाती है और सम्पूर्ण जगत्में अधिष्ठित है और पर है जिसके रूप और कर्मोंके जाननेमें तीनों देवता भी जड़ हैं उस मूल प्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं ॥२०॥ जिसकी भक्तिस युक्त पुरुष सदा दारिद्रय, भय, मोह और तिरस्कार आदिको नहीं प्राप्त होता है

नारद उवाच ॥ स्तवमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः । दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्तितम् ॥२२॥ इत्थं स्तुवन्तस्ते देवस्तेजोमण्डलमास्थितम् । ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥२३॥ तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम् ॥ शक्तिरुवाच ॥ अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः ॥२४॥ गौरी लक्ष्मीः स्वरा ज्योती रजःसत्त्वतमोगुणैः । तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्द्धानमगान्महः । देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप ॥२६॥ ततः सर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः । गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः ॥ २७ ॥ ततस्तांस्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः । बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुस्तदा च ताः ॥२८॥ देव्य ऊचुः ॥ इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते । निर्वपध्वंततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥२९॥ नारद उवाच ॥ ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसंघाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते । वृन्दाचिताभूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्य हीनः ॥३०॥ इत्येतत्सत्यवाक्यस्य माहात्म्यं समुदाहृतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ३१ ॥

ऐसी और भक्त जिसे प्यारे हैं एसी मूल प्रकृतिको हम सदा नमस्कार करते हैं ॥ २१ ॥ नारद बोले, जो पुरुष इस स्तोत्रका एकाग्रमन हो त्रिकाल पाठ करता है उसको दरिद्रता मोह और दुःख कभी नहीं स्पर्श करते हैं ॥२२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुये वे देव आकाशमें स्थित और ज्वालासे व्याप्त दिशाओंके अन्तर जाने ऐसे तेजमडल को देखा ॥ २३ ॥ उस तेजमंडलके मध्यसे सब देवता आकाशमें विचरनेवाली वाणीको सुनने लगे । शक्ति बोली––मैं ही तीन प्रकारसे तीनों गुणोंसे स्थित रहती हूँ ॥२४॥ गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती इनके रज, सत्व, तम इन तीनों गुणोंका आश्रय मैं ही हूँ । हे देवताओं ! वहां जावो तुम्हारा कार्य करेंगी ॥२५॥ नारद बोले हे राजा ! विस्मयसे विकसित हैं नेत्र जिनके ऐस देवताओंने उस वाणीको सुना, उस समय वह तेज अन्तर्धान हो गया ॥२६॥ उसक बाद उसी वाक्यसे प्रेरित देवता गौरी, लक्ष्मी तथा सरस्वतीकी भक्तिमें तत्पर होकर प्रणाम करने लगे ॥२७॥ उसके बाद भक्त हैं प्रिय जिनको ऐसी वे तीनों देवताओंको प्रणाम करते देख उनको बीज देती हुई उस समय उनसे वचन भी बोली ॥२८॥ देवी बोली, इन बीजोंको वहां जाकर बो दो जहां विष्णु बैठे हैं उसके बाद तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा ॥२९॥ नारद बोले, उसके बाद देवता और सिद्धोंके समूह आनंदित हो बीजोंको ले वहां बोते हुये जहां वृन्दाकी चिताभूमिमें सुखरहित विष्णु सदा विराजमान हैं ॥३०॥ यह हमने सत्य वाक्यका माहात्म्य कहा इसको जो

श्रृणुयादेकचित्तेन अविघ्नेनापि युज्यते । सुतैर्विमुक्तां या नारी नरश्चापि पठेत्सदा ॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिक० जलन्धरवधो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् । धात्री चामालती चैव तुलसीच नृपोत्तम ॥ १ ॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता । गौरीभवा च तुलसी रजः सत्त्वतमोगुणाः ॥ २ ॥ स्त्रीरूपिण्यो वनस्पत्यो दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप । उत्तस्थौ संभ्रमाद्वृन्दारूपातिशयविभ्रमः ॥३॥ दृष्ट्वाऽऽशु तेन ता रागात्कामासक्तेन चेतसा । ते चापि तुलसीधात्र्यौ विष्णुमेवाव लोकताम् ॥४॥ यच्च लक्ष्म्या पुरा बीजमीर्ष्ययैव समर्पितम् । तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत् ॥ ५ ॥ अतःसाबर्बरीत्याख्यामवापातीव गर्हिता । धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा ॥ ६ ॥ ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु । वैकुण्ठमगमद् हृष्टः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ७ ॥ कार्त्तिकोद्यापने विष्णुस्तस्मात्पूजा विधीयते । तुलसी मूलदेशे तु प्रीतिदा सा ततः स्मृता ॥८॥ तुलसीकाननं राजन् गृहे यस्यावतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यम किङ्कराः ॥ ९ ॥

कोई पढ़ेगा, सुनेगा वह स्वर्ग लोकको प्राप्त करेगा ।।३१।। जो एकाग्रचित्त होकर सुनेगा उसको विघ्न कभी न होंगे और जो पुत्रहीन नरनारी सुनेंगे वा पढेंगे उनको पुत्र होगा ।। ३२ ।। इति श्रीमत्पण्डितकेशवप्रसादशर्मकृतकार्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।। नारद बोले, हे राजा ! बोये हुये बीजोंसे धात्री मालती और तुलसी ये तीनों वनस्पति हुईं ।। १ ।। जो ब्रह्माकी स्त्रीके बीजोंसे उत्पन्न हुई वह धात्री कही गई और जो लक्ष्मीके दिये बीजोंसे उत्पन्न हुई वह मालती कही गई और जो गौरीके बीजोंसे उत्पन्न हुई वह तुलसी कहलाई, ये तीनों क्रमसे रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण रूप हुईं ।। २ ।। हे राजा ! तब स्त्रीके रूपमें जो वनस्पति हैं उन्हें वृन्दाके रूपको अतिशय विलासयुक्त देख विष्णु शीघ्रही उठ ।।३।। काममें आसक्त है चित्त जिनका ऐसे विष्णुसे प्रीतिसे देखी गई वह तुलसी और धात्री भी विष्णुहीको देखने लगी ।।४।। जो बीज पहले लक्ष्मीसे ईर्ष्यासहित दिया गया उस बीजसे उत्पन्न स्त्री विष्णुमें ईर्ष्या करने लगी ।। ५ ।। इस कारण अति निंदित वह बर्बरी इस नामको प्राप्त हुई और धात्री तथा तुलसी उनमें प्रीति करनेसे उनकी प्रीति बढ़ानेवाली हुई ।। ६ ।। उसके बाद भूल गया है दुःख जिनको ऐसे सब देवताओंसे नमस्कार किये गये विष्णु प्रसन्न हो उन दोनों समेत वैकुण्ठ भवनको गये ।। ७ ।। इससे कार्त्तिकके उद्यापनके समय तुलसीमूलके निकट विष्णुकी पूजा की जाती है और वह विष्णुकी प्रीति बढ़ानेवाली कही गई है ।। ८ ।। हे राजा ! जिसके घरमें तुलसीवन स्थित रहे उसका घर तीर्थरूप है वहां यमके दूत नहीं आते हैं ।।९ ।। सब पापोंके दूर करनेवाले और कामनाके

सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम्॥ रोपयन्ति नरश्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥१०॥ दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च। तुलसीवनसंसर्गः सममेतत् त्रयं स्मृतम् ॥ ११ ॥ रोपणात् पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्। तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥ १२ ॥ तुलसीमंजरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम्। न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥१३॥ पुष्करादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा। वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले ॥ १४ ॥ तुलसीमृत्तिकालिप्तो यस्तु प्राणान्विमुंचति। यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तः पापशतैरपि। विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ॥ १५ ॥ तुलसीकाष्ठजं यस्तु चंदनं धारयेन्नरः। तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥१६॥ तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेन्नृप। तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ १७ ॥ धात्रीच्छायासु यः कुर्यात् पिण्डदानं नृपोत्तम। तृप्तिं प्रयान्ति पितरस्तस्य ये नरके स्थिताः ॥१८॥ मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव देहे च नृपसत्तम। धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिः स्वयम् ॥१९॥ धात्रीफलं च तुलसा मृत्तिका द्वारकोद्भवा। यस्य देहे स्थिता नित्यं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २० ॥

पूर्ण करनेवाले पवित्र तुलसी के वनको जो पुरुष लगाते हैं वे श्रेष्ठ मनुष्य यमराजका दर्शन नहीं करते हैं ॥१०॥ नर्मदा नदीका दर्शन, गंगाजीका स्नान और तुलसीके वनका संसर्ग ये तीनों एक समान कहे गये हैं ॥११॥ लगानेसे, पालनेसे, सींचनेसे, दर्शनसे, स्पर्शसे तुलसी वाणी, मन और कायासे इकट्ठे किये हुये पापोंको जला देती है ॥ १२ ॥ जो पुरुष तुलसीकी मंजरीसे हरि (विष्णु) और हर (शिव) इनका पूजन करता है वह गर्भरूप घरमें नहीं आता है, निस्संदेह मुक्तिको पानेवाला होता है ॥ १३ ॥ पुष्कर आदिक तीर्थ और गंगा आदिक नदी और वासुदेव आदिक देवता तुलसीदलमें वास करते हैं ॥१४॥ तुलसीके मूलकी मृत्तिका जिसके अंगमें लगी हुई है ऐसा जो पुरुष प्राणोंको छोड़ता है, उसे सैकड़ों पापोंसे युक्त होने पर भी यमराज देखने में समर्थ नहीं है, हे राजा! वह विष्णुके समीप प्राप्त होता है। यह वार्त्ता वारंवार सत्य है ॥१५॥ जो पुरुष तुलसी काष्ठका चन्दन धारण करता है, उसकी देहको किया भय भी पाप नहीं स्पर्श करता है ॥१६॥ हे राजा! जहां-जहां तुलसीके वनकी छाया हो वहां वहां श्राद्ध करना चाहिये और पितरोंको दिया हुआ अक्षय होता है ॥ १७ ॥ हे राजा! आमलेकी छायामें जो पिंडदान करता है तो नरकमें स्थित भी उसके पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे राजाओंमें उत्तम! मस्तकमें, हाथमें, मुखमें और देहमें जो पुरुष आमलेके फलको धारण करता है वह साक्षात् विष्णुका रूप है ॥१९॥ आमलेका फल, तुलसी और द्वारकाकी मृत्तिका ये जिसकी देहमें नित्य स्थिर रहती हैं वह पुरुष जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२०॥ आमलेके फलों और तुलसी-

धात्रीफलविमिश्रैस्तु तुलसीदल मिश्रितैः । जलैः स्नाति नरस्तस्य गंगास्नानफलं स्मृतम् ॥ २१ ॥ देवार्चनं नरः कुर्याद्धात्रीपत्रैः फलैरपि । सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याप्नुयात्फलम् ॥ २२ ॥ तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाः सर्वेऽपि कार्त्तिके । नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठंत्यर्के तुलाश्रिते ॥ २३ ॥ द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्त्तिके । लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥२४॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः । अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यति ॥२५॥ धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्त्तिके पूजयेन्नरः । विष्णुः क्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा ॥२६॥ धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः । न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २७ ॥ धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या । विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ॥२८॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिक० धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ पृथुरुवाच ॥ सेतिहासमिदं ब्रह्मन्माहात्म्यं कथितं मम । अत्याश्चर्यकरं सम्यक्तुलस्यास्तच्छ्रुतं मया ॥१॥ यदूर्जव्रतिनः पुंसः फलं महदुदाहृतम् ॥ तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं कथम् ॥ २ ॥

के दलोंसे मिले हुये जलसे जो मनुष्य स्नान करता है उसे गंगा स्नानका फल मिलता है ॥२१॥ जो मनुष्य आमलेके पत्तों या फलों स देवताओंका पूजन करता है वह सुवर्ण, मणि और मोतियों के समूहसे जो पूजन है उसके फलको प्राप्त होता है ॥२२॥ तीर्थ, मुनीश्वर और देवता कार्त्तिकमें तुला राशिके सूर्य होनेके समय सदा धात्रीका आश्रय लेकर स्थित रहते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य द्वादशीको तुलसीदलका तथा कार्त्तिकमें धात्रीफलका छेदन करे वह अतिनिंदित नरकको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो कार्त्तिकके महीनेमें आमलेके वृक्षके नीचे बैठकर अन्नका भोजन कर उसको अन्नके संसर्गसे उत्पन्न हुआ एक वर्ष पर्यन्तका पाप नाशको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो कार्त्तिकके महीनेसे आमलेके वृक्षके नीचे विष्णुका पूजन करता है उसको सब क्षेत्रोंमें जो विष्णुके पूजनका फल है, वह सदा प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ धात्री और तुलसीके माहात्म्यको चतुर्भुज ब्रह्माभी कहनेको समर्थ नहीं हैं ॥२७॥ धात्री और तुलसीकी उत्पत्तिके कारण को जो मनुष्य भक्तिसे सुनता या सुनाता है वह पापरहित हो अपने पुरुषोंसमेत उत्तम विमानमें बैठकर स्वर्गको जाता है ॥ २८ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्म्मद्विवेदिविरचितायां कार्त्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायामष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ पृथु बोले, हे महाराज ! इतिहासके सहित अति आश्चर्यका करनेवाला तुलसीका माहात्म्य और व्रत आपने मुझसे वर्णन किया वह मैंने भलीभांति श्रवण किया ॥ १ ॥ जो कार्त्तिकव्रत करनेवाले पुरुष का फल है वह आपने कहा। अब माहात्म्य भी कहिये और यह व्रत पहले किसने किया और

नारद उवाच ॥ आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा । ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः ॥३॥ विष्णुव्रतकरः शश्वद्विष्णुपूजारतः सदा । द्वादशाक्षर विद्यायां जपनिष्ठोऽतिथि प्रियः ॥४॥ कदाचित्कार्त्तिके मासि हरिजागरणाय सः । रात्र्यां तुर्यांशशेषायां जगाम हरि मंदिरम् ॥५॥ हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा । तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना ॥६॥ वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्नारक्तलोचना । दिगंबरा शुष्कमांसा लंबोष्ठी घर्घरस्वना ॥ ७ ॥ तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कंपितावयवस्तदा । पूजोपकरणैस्सर्वैः पयोभिश्चाहनद्भयात् ॥८॥ संस्मृत्य यद्धरेर्नामतुलसीयुक्तवारिणा । सोऽहनत्पातकं तस्यास्तस्मात्सर्वमगाल्क्षयम् ॥९॥ अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् । स्वां दशामब्रवीद्विप्रं दण्डवच्च प्रणम्य सा ॥१०॥ कलहोवाच ॥ पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गतास्म्यहम् । तत्कथं तु पुनर्विप्र प्राप्नुयामुत्तमां गतिम ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्मज्ञतत् । अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत ॥१२॥ धर्मदत्त उवाच ॥ केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता । कुतस्त्या का च किंशीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ १३ ॥

कैसे किया यह सब वर्णन करिये ।।२।।नारद बोले--सह्याचल पर्वतपर करवीपुर नाम नगरमें धर्मका जाननेवाला धर्मदत्त नामसे प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण था ।।३।। सदा विष्णुका व्रत करने वाला और निरंतर विष्णु पूजामें तत्पर और द्वादशाक्षर मंत्रके जपमें निष्ठ और अभ्यागतोंका सेवक ऐसा वह धर्मदत्त हुआ ।।४।। किसी समय वह कार्त्तिक महीनेमें पहरभर रात रहे हरिके जागरणके निमित्त हरिमंदिरको गमन किया ।।५।। हरिके पूजनकी सामग्री लेकर जाते हुए उस ब्राह्मणने आती हुई एक भयावनी राक्षसीको देखा ।।६।। टेढ़ी डाढ़ों वाली, जिह्वा को लप-लपाती हुई, अन्दर धंसे हुये, लाल नेत्रोंवाली, नग्न, सूखे मांसों से युक्त लम्बे और भीतरको गड़े हुये लाल हैं नेत्र जिसके और नंगी और सूखा है मांस होंठ, और घर्घराहटयुक्त शब्द करती हुई आ रही थी ।।७।। उसे देख भयसे घबराकर कांपते हुए वह ब्राह्मण भयके कारण पूजाकी जो सामग्री है और पूजाके निमित्त जो जल हैं उससे राक्षसीको मारा ।।८।। हरिका स्मरण करके तुलसीयुक्त जलसे मारते ही उस राक्षसीके सब पाप नष्ट हो गये ।।९।। इसके बाद वह पहले जन्मके कर्मोंके परिपाकसे उत्पन्न हुई अपनी दशाको स्मरण करके ब्राह्मणको दंडवत् कर बोली ।। १० ।।। कलहा बोली, पहले कर्मके फलसे मैं इस दशाको प्राप्त हुई हूँ। हे ब्राह्मण ! उससे मैं कैसे उत्तम गतिको प्राप्त होऊँ ।।११।। नारद बोलें,–भलीभांति प्रणाम कर अपनें उस कर्मको कहती हुई जो कलहा है उसे देख वह ब्राह्मण बहुतही विस्मित हो उस समय वचन बोला ।।१२।। धर्मदत्त बोले, कौनसे कर्मके फलसे तू ऐसी दशाको प्राप्त हुई और कहांकी है, कौन है, कैसा तेरा

कलहोवाच ॥ सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुर्नामाभवद्द्विजः । तस्याहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्याऽति निष्ठुरा ॥१४॥ न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसापि शुभं कृतम् । नार्पितं तस्यमिष्टान्नं भर्तुर्वञ्चनशीलया ॥१५॥ कलहप्रियया नित्यं भयोद्विग्नमना यदा । परिणेतुं तदान्यां तु पतिश्चक्रे मतिं मम ॥१६॥ ततो गरं समादाय प्राणांस्त्यक्त्वा मृतिं गता । अथ बद्ध्वा बध्यमानां मां निन्युर्यमकिङ्कराः ॥१७॥ यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ यम उवाच ॥ अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त विलोकय ॥ १८ ॥ प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ कलहोवाच ॥ चित्रगुप्तस्तदावाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः ॥१९॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते । मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् ॥२०॥ अतश्च वल्गुनीयोन्यां स्वविष्ठादि च तिष्ठतु । भर्तृद्वेषकरी ह्येषा नित्यं कलहकारिणी ॥ २१ ॥ विष्ठादि शूकरीयोनौ तस्मात्तिष्ठत्वियं हरे । पाकभाण्डे सदा भुंक्ते भुंक्ते चैका यतस्ततः ॥२२॥ तस्मादेषा बिडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी । भर्त्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया ॥२३॥ तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेषातिनिंदिता । अतश्चैव मरौ देशे प्रापितव्या भटस्तव ॥२४॥

शील है, यह सब मुझसे कह ॥१३॥ कलहा बोली—हे महाराज ! सौराष्ट्रनगरमें भिक्षुनाम ब्राह्मण था मैं उसकी स्त्री थी, कलहा मेरा नाम था और बहुतही निष्ठुर थी ॥१४॥ मैंने कभी वचनोंसे भी भर्ताका शुभ न किया गया और कभी मीठा अन्न न दिया सदा पतिकी वञ्चनशीला रही ॥१५॥ कलह है प्यारा जिसको ऐसी मुझसे जब उद्विग्न मन हुआ तब मेरा पति दूसरी स्त्रीसे ब्याहकर लिया ॥१६॥ उसके बाद मैं विषको खाकर प्राणोंको तज मृत्युको प्राप्त हुई, तब यमके दूत मुझको बांधकर मारते हुये यमलोकको ले गये ॥ १७ ॥ तब यम मुझको देखकर चित्रगुप्तसे पूछने लगा ॥ यम बोले,—हे चित्रगुप्त ! इसने क्या काम किया है, उसे दखो ॥१८॥ इसने भला या बुरा जो कर्म किया हो उसका फल यह पावे। कलहा बोली—तब वह चित्रगुप्त मुझको धमकाता हुआ वचन बोला ॥१९॥ चित्रगुप्त बोले इसने किंचित् मात्र भी शुभ कर्म नहीं किया है, मिष्ट अन्न को खाती हुई इसने भर्ताको नहीं दिया ॥२०॥ अतः वल्गुनी नाम जो पक्षी है उसकी योनिमें जाकर अपनी विष्ठा खाती रहे। यह भर्तासे सदा द्वेष और कलह करनेवाली है ॥ २१ ॥ अतः विष्ठा खानेवाली शूकरकी योनि को प्राप्त हो। सदा पाक करनेके पात्र अर्थात् कराही—वटला आदिमें भोजन करती थी और अकेली भोजन करती थी ॥ २२ ॥ इस लिए अपने उत्पन्न हुये बच्चोंकी खानेवाली बिल्लीकी योनिको प्राप्त हो। इसने भर्ताके ऊपर विष खाकर आत्मघात किया ॥ २३ ॥ अतःअतिनिंदित प्रेत शरीरमें स्थित रहे और इसीसे यह तुम्हारे दूतोंसे मरु देशमें पहुँचाने योग्य है ॥२४॥ वहां प्रेत शरीरमें यह बहुत काल-

तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥ ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥२५॥ कलहोवाच ॥ सा पंचशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल । क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता नित्यं दुःखिता स्वेन कर्मणा ॥ २६ ॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीर वणिजां त्वहम् ॥ आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च संगमम् ॥२७॥ तत्तीरं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः । शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम् ॥ २८ ॥ ततः क्षुत्क्षामया हि त्वं गच्छन् दृष्टो द्विजोत्तम । त्वद्धस्ततुलसीनीरसंसर्गगतपापया ॥२९॥ तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथ मुक्तिमवाप्नुयाम् । योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥३०॥ इत्थं निशम्य कलहा वचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभवविस्मयदुःखयुक्तः । तद्ग्लानिदर्शन कृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात्॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः । प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥ १ ॥ त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् । नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥२॥ पातकं च तवात्युग्रं योनित्रयविपादकम् । नैवाल्पैःक्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥ ३ ॥

पर्यन्त रहे उसके बाद अशुभ करनेवाली यह और तीन योनियोंको भोग करे ॥ २५ ॥ कलहा बोली मैं पांच वर्षोंसे प्रेतयोनिमें क्षुधा पिपासासे पीड़ित और अपने कर्मसे सदा दुःखयुक्त स्थित हूँ ॥२६॥ क्षुधापिपासासे पीड़ित मैं वैश्योंके शरीरमें प्रवेश करके दक्षिण दिशामें कृष्णा और वेणी नदियोंके संगमपर आई ॥ २७ ॥ जब उनके तटपर पहुँची तभी मैं शिव तथा विष्णुके गणोंसे दूर निकाल दी गई ॥२८॥ उसके बाद क्षुधासे पीड़ित जो मैं हूँ सो हे उत्तम ब्राह्मण ! तुमसे देखी गई और तुम्हारे हाथमें जो तुलसीदलयुक्त जल है उसके संसर्गसे मेरे पातक दूर हो गये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अतः कृपा करो जिससे मैं आगे होनेवाली तीन योनिसे और इस प्रेतयोनिसे कैसे भी मुक्तिको पाऊँ अर्थात् छूट जाऊँ ॥३०॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकार कलहा के वचन सुन उसके कर्मोंके फलसे उत्पन्न उसकी ग्लानिको देखनेसे उत्पन्न हुई जो कृपा है उससे चलायमान है चित्तवृत्ति जिसकी ऐसा वह ब्राह्मण बहुत देरमें सोचकर दुःखसे वचन बोला ॥ ३१ ॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ धर्मदत्त बोले,–तीर्थ, दान व्रत आदिकोंसे पाप दूर होते हैं परंतु प्रेतदेहमें स्थित होने से उन्हें करनेका अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तेरी ग्लानिको देखकर मेरा मन खेदयुक्त हुआ। दुःखित जो तू है उसे दूर किये विना मेरा मन सुखी न होगा ॥२॥ तीन योनिको देनेवाला तेरा पाप अति उग्र है

तस्मादाजन्मचरितं यन्मया कार्तिकव्रतम् । तत्पुण्यस्यार्द्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥ ४ ॥ कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं यान्ति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि दत्तान्यपि यतोध्रुवम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा धर्मत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वा दशाक्षरम् ॥ ६ ॥ तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ताज्वलदग्निशिखोपमा । दिव्यरूपधारा जाता लावण्येन यथेन्दिरा ॥७॥ ततःसा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम् । उवाच सा सदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥ ८ ॥ कलहोवाच ॥ त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ निर्मुक्ता निरयादहम् । पापौघमज्जमानायायास्त्वं नौर्भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥ नारद उवाच ॥ इत्थं सा वदती विप्र ददर्शयान्तमम्बरात् । विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥१०॥ अथ सा तद्विमानाग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामधिरोपिता । पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता ॥११॥ तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयम् । पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ विष्णु रूपिणौ ॥१२॥ पुण्यशीलसुशीलौ च तमुत्थाप्यानत द्विजम् । समभ्यनन्दयन्तौ तावूचतुर्धर्मसंयुतम् ॥१३॥ गणावूचतुः ॥ साधुसाधु द्विजश्रेष्ठ यत्त्वं विष्णुरतः सदा । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥ १४ ॥

और अतिनिंदित प्रेतयोनि भी थोड़े पुण्यसे क्षीण न होगी ।। ३ ।। अतः जन्मसे लेकर जो मैंने कार्तिकका व्रत किया है उस पुण्यके आधे भागसे तू उत्तम गतिको प्राप्त हो ।।४।। यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, इन सबका पुण्य कार्तिक व्रतके पुण्यकी समानताको नहीं प्राप्त कर सकता है ।।५।। नारद बोले ऐसे कहकर जबतक धर्मदत्त द्वादशाक्षर मंत्र सुनाता हुआ ज्योंही तुलसीदलोंसे मिले हुये जलको उस पर छिड़का ।।६।। त्योंही प्रेतयोनिसे छूटी हुई वह कलहा जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान दिव्य रूप धारण कर सुंदरतामें लक्ष्मीके समान बन गई ।।७।। उसके बाद वह ब्राह्मणको दंडवत् प्रणाम करती हुई और हर्षसे गद्गदवाणी हो वचन बोली ।।८।। कलहा बोली ह ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं तुम्हार प्रसादसे नरकसे छूटी। पापोंके प्रवाहमें डूबी हुई जो मैं उसको आप निश्चय नौका हुये ।।९।। नारद बोले–ऐसे उस ब्राह्मणसे कहती हुई वह कलहा भास्वर अर्थात् प्रकाशमान विष्णुका सा है रूप जिनका ऐसे गणोंसे युक्त विमान देखा ।।१०।। वह कलहा पुण्यशील और सुशील नामक विष्णुके द्वारपालों द्वारा श्रेष्ठ विमान में बैठाई गई ।।११।। उस समय विमानको धर्मदत्त विस्मयसहित देखा और उन गणोंको विष्णुका रूप देख दंडवत् प्रणाम किया ।।१२।। पुण्यशील सुशील नामक दोनों विष्णुके गण प्रणाम करते हुये ब्राह्मणको उठाकर उसकी प्रशंसा कर धर्मयुक्त वचन बोलो ।।१३।। गण बोले–हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम बहुत अच्छे हो और विष्णुकी भक्तिमें सदा रत हो, दीनों पर दया करनेवाले हो,

आबालत्वाच्छुभंत्वेतद्यत्त्वया कार्त्तिकव्रतम् । कृतं तस्यार्धदानेन यदस्याः पूर्वसंचितम् ॥ १५ ॥ जन्मा-
न्तरशतोद्भूतं पापं तद्विलयं गतम् । स्नानादेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् ॥ १६ ॥ हरिजागरणाद्यैश्च
विमानमिदमास्थितम् । वैकुण्ठं नीयते साधो नाना भोगयुतात्वियम् ॥ १७ ॥ दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजसां
रूपमास्थिता । तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्त्तिकव्रतकैः शुभैः ॥१८॥ विष्णोः सन्निधिगा जाता त्वया दत्तं कृपानिधे।
त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि ॥ १९ ॥ वैकुण्ठभवनं विष्णोः सानिध्यं च सरूपताम् । ते
धन्याः कृतकृत्यास्ते तेषां च सफलो भवः ॥ २० ॥ यैर्भक्त्याऽऽराधितोविष्णुधर्मदत्त त्वया यथा। सम्यगारा-
धितो विष्णुः किन्न यच्छति देहिनाम् ॥ २१ ॥ औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा । यन्नामस्मरणादेव
देहिनो यान्ति सद्गतिम् ॥ २२ ॥ ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा। विमुक्तः सन्निधिं प्राप्तो जातोऽयं
जयसंज्ञकः ॥२३॥ यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि । बहून्यब्दसहस्राणि भायाद्वययुतस्य ते
॥ २४ ॥ ततः पुण्यक्षये जाते यदा यास्यसि भूतले । सूर्यवंशोद्भवो राजा विख्यातस्त्वं भविष्यसि ॥ २५ ॥

धर्मज्ञ और सदा विष्णुके व्रतमें तत्पर हो ॥१४॥ बालकपनसे आज तक तुमने जो उत्तम कार्तिकका व्रत किया है उसका जो
आधा फल है उसके देनेसे ही इसका सौ जन्मका संचित पाप नाशको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ इसका पूर्वजन्मका पाप तो स्नानही-
से जाता रहा और हरिका जागरण आदि जो तुमने किया है उसके फलसे यह विमान प्राप्त हुआ है ॥१६॥ हे साधो ।
नाना प्रकारके भोगसे युक्त वैकुण्ठको इसने प्राप्त किया है ॥ १७ ॥ और दीपदान जो कार्तिकमें तुमने किया है
उसके पुण्यसे इसे यह तेजरूप प्राप्त हुआ है और कार्तिकव्रतमें किये हुये तुलसी आदिके पूजनसे ॥ १८ ॥ जो तुमने पुण्य किया
है उससे विष्णुके समीप जानेवाली हुई और हे कृपानिधि ! इस जन्मके अंतमें स्त्रियोंसमेत तुम भी विष्णुलोकको जावोगी
॥१९॥ विष्णुके वैकुंठ भवनमें भगवान्के समीप सारूप्य मुक्तिको प्राप्त करोगे। वे धन्य हैं और वे कृतकृत्य हैं तथा उन्हींका
जन्म सफल है ॥ २० ॥ जिन्होंने भक्तिसे, हे ! धर्मदत्त तुम्हारी भांति विष्णुपूजा किये हैं। भलीभांतिसे पूजन किये गये विष्णु
मनुष्य को कौन-सा फल नहीं देते हैं ॥२१॥ पहले उत्तानपादका पुत्र (ध्रुव) निश्चल स्थानको प्राप्त किया। जिन भगवान्के
नामके स्मरण से ही देही जो मनुष्य हैं उस सद्गति अर्थात् उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥२२॥ पहले ग्राहकरके पकड़ा गया
गजेन्द्र जिन भगवान्के नाम स्मरणसे मुक्त हो सामीप्य मुक्तिको प्राप्त करके जयनाम गण कहलाया ॥ २३ ॥ क्योंकि तुमने
विष्णु भगवान् का पूजन किया है अतः तुम भी कई हजार वर्ष दोनों स्त्रियों समेत संसारमें भोग करके उनकी समीपको प्राप्त

नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः। तृतीययाऽनया चापि या ते पुण्यार्धं भागिनी ॥ २६ ॥ तत्रापि तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले। आत्मानं तव पुत्रत्वे प्रकल्प्यामरकार्यकृत् ॥ २७ ॥ तवोर्जस्य व्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात्। न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥२८॥ धन्योऽसि विप्रेन्द्रयतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः। यदर्धभागात्सफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियंसलोकताम् ॥ २९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमा० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम्। यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥२॥ विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सानिध्यकारकम्। यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवंति हि ॥३॥ गणावूचतुः ॥ साधुः पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः। सेतिहासं पुरावृत्तं कथ्यमानं मयाऽनघ ॥ ४ ॥ काञ्चिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत्। यस्याख्ययैव ते देशाश्चौला इति प्रथां गताः ॥ ५ ॥

करोगे ।।२४।। उसके बाद पुण्य जब क्षीण होगा तब पृथ्वी पर सूर्यवंशमें उत्पन्न होकर प्रसिद्ध राजा होगा ।। २५ ।। दशरथ नाम होगा वहां भी दोनों स्त्रियोंसे युक्त होंगे और तीसरी कलहा से भी युक्त होगा जो तुम्हारे आधे पुण्यकी पानेवाली है ।।२६।। इसी जन्ममें विष्णु पृथ्वीमें तुम्हारी समीपताको प्राप्त होंगे। तुम्हारे पुत्र होकर देवताओंका कार्य करेंग ।। २७ ।। विष्णुके प्रसन्न करनेवाले इस कार्त्तिकके व्रतसे न तो यज्ञ, न दान और न तीर्थ ही श्रेष्ठ हैं अर्थात् यह कार्त्तिकका व्रत सब यज्ञादिकसे श्रेष्ठ है ।। २८ ।। हे विप्रेन्द्र ! तुम धन्य हो, तुमने यह भगवान्का प्रसन्न करनेवाला व्रत किया, जिस व्रतके आधे भागके फलको प्राप्त कर कलहा हमारे द्वारा मुरारि जो श्रीभगवान् हैं उनकी समीपताको प्राप्त कर लिया ।।२९।। इति श्रीमत्पंडितकेशवप्रसाद० कार्त्तिकमा० भाषार्थबोधिनी० विंशतितमोऽध्यायः ।।२०।। नारद बोले—इस प्रकार उन विष्णुके पार्षदोंका वचन सुनकर धर्मदत्त विस्मित हो दंडवत्प्रणाम कर यह वचन बोला ।। १ ।। धर्मदत्त बोले, भक्तकी पीड़ा दूर करनेवाले विष्णुका सब मनुष्य यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ और तपोंसे विधिपूर्वक पूजन करते हैं ।।२।। उनमेंसे विष्णुको प्रसन्न करनेवाला और सान्निध्य देनेवाला कौन-सा है जिसके करनेसे सब यज्ञादि सफल हो जायँ ।।३।। गण, बोले—हे ब्राह्मण ! तुमने अच्छा प्रश्न किया। हे अनघ ! अर्थात् पापरहित ! इतिहास सहत जो पहिले वृत्तांत हम कहते हैं उसे तुम एकाग्र चित्त होकर सुनो ।। ४ ।। कांचीपुरीमें पहले चोल नाम चक्रवर्त्ती राजा हुआ जिसक नामसे ही चोलदेश प्रसिद्ध था ।।५।। उस राजाके पृथिवी पालनके समय म कोई मनुष्य दरिद्री, दुःखी,

यस्मिञ्छासति भूचक्रे दरिद्रो वापि दुःखितः। पापबुद्धिःसरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥६॥ यस्यप्यनन्तयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ। सुवर्णयूपैः शोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ ॥ ७ ॥ स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज। यत्रासौ जगतां नाथो योग निद्रामुपाश्रितः ॥ ८ ॥ तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विधिवन्नृपः। मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः ॥९॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै। तावद्ब्राह्मणमायान्तमपश्यद्देवसन्निधौ ॥ १० ॥ देवार्चनार्थं पाणौ तु तुलस्युदकधारिणम्। स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥११॥ स तत्राभ्येत्य विप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत्। विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः ॥१२॥ तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुराकृताम्। आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १३ ॥ चोल उवाच ॥ माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया। विष्णुदास कथंसेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥१४॥ विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतिर्मम। यत्स्वमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥१५॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः। राज्ञो गौरवमुल्लंघ्य जगाद वचनं तदा ॥ १६ ॥

पापबुद्धि और रोगी नहीं था ।।६।। असंख्य यज्ञ करनवाले जिस चोलके यज्ञ स्तंभों से ताम्रपर्णीनदीके दोनों तट शोभायुक्त चैत्ररथ जो कुबेरका वन है उसके समान सुशोभित हुये ।।७।। हे ब्राह्मण ! किसी समय वह राजा जहां जगतोंके स्वामी विष्णु भगवान् योगमायाका आश्रय लेकर शयन करते हैं उस अनंतशयन नामक स्थानमें गया ।८।। वहां श्रीपति भगवान् ो दिव्य मणियों और मोतियोंसे शोभायमान सुवर्णके फूलोंसे पूजन किया ।।९।। दण्डवत्प्रणाम करक वहीं बैठा तब वह देवके समीप आते हुये एक ब्राह्मणको देखा ।। १० ।। देवकी पूजाके निमित्त हाथमें तुलसी और जलको धारण किये है और अपनी पुरी अर्थात् कांचीपुरीका रहनेवाला विष्णुदास उसका नाम है ऐसे ब्राह्मणको देखा ।। ११ ।। वह ब्रह्मऋषि वहां जाकर विष्णु सूक्तसे स्नान कराकर तुलसीकी मंजरी और तुलसीपत्र से देवदेव जो भगवान् हैं उनका पूजन किया ।।१२।। उस ब्राह्मणकी तुलसी मंजरी द्वारा पहले की हुई अपनी रत्नों द्वारा पूजाको ढंकी हुई देखकर राजा क्रोधित हो वचन बोला ।।१३।। चोल बोला; यहां माणिक्य और सुवर्ण द्वारा जो पूजा शोभायुक्त मैंने की है विष्णुदास तुमने वह तुलसीके दलसे क्यों आच्छादित करदी अर्थात् तुमने क्यों ढँक दी ? ।। १४ ।। विष्णु भक्तिको नहीं जानता है तू ढोंगी है। मैं जानता हूँ कि तू अति शोभा करके युक्त जो पूजा है उसे ढंकता है ।। १५ ।। यह उस चोलराजके गौरवको न मान उस समय वचन बोला ।।१६।। विष्णुदास बोले, हे राजा ! तुम भक्तिको नहीं जानते हो राज्य लक्ष्मीसे

विष्णुदास उवाच ॥ राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया । कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥१७॥ गणावूचतुः ॥ तद्ब्राह्मणवचःश्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः । विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विजम् ॥१८॥ राजोवाच । इत्थं वदसि चेद्विप्र विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः । भक्तिस्ते कियती विप्र दरिद्रस्याधनस्य च ॥१९॥यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् । नापि देवालयं पूर्वं कृतं विप्र त्वया क्वचित् ॥२०॥ ईदृशस्यापि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तितः । तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजोत्तमाः ॥२१॥ साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वाद्य गमिष्यति । पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः ॥२२॥ गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा । आरेभे वैष्णवं सत्रं कृत्वाचार्यं स मुद्गलम् ॥२३॥ ऋषिसंघसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् । यद्व्रतं च कृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥२४॥ विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती । यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥२५॥ माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम् । एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षर विद्यया ॥२६॥ उपचारैः षोडशभिर्गीतनृत्यादिमङ्गलैः । नित्यं विष्णोस्तदा पूजां व्रतान्येतानि सोऽकरोत् ॥२७॥

गर्वित हो रहे हो तुमने पहले कितना विष्णुका व्रत किया है वह कहो ॥ १७ ॥ गण बोले—उस ब्राह्मणके वचनको सुन वह नृपश्रेष्ठ हँसकर विष्णु दाससे गर्वयुक्त वचन बोला ॥१८॥ राजा बोला, हे ब्राह्मण ! जो तू विष्णुभक्तिसे अति गर्वित हो ऐसे कहता है तो दरिद्र और निर्धन जो तू है भक्ति ही कितनी है ॥ १९ ॥ विष्णुको तुष्टि करनेवाले यज्ञ-दान तूने नहीं किये और हे ब्राह्मण ! तूने कहीं पहले देवालय नहीं बनवाया ॥२०॥ ऐसा होने पर भी तुझे भक्तिका घमंड है, हे ब्राह्मण ! उस समय वे सब ब्राह्मण मेरा वचन सुने ॥२१॥ अब तुम सब देखो कि यह ब्राह्मण अथवा हम विष्णुके साक्षात्कारको प्राप्त होंगे हे ब्राह्मण ! तब तुम सब दोनोंकी भक्तिको जानोगे ॥२२॥ गण बोले,—ऐसा कहकर वह राजा अपने राजभवनको गया और मुद्गल ऋषिको आचार्य करके विष्णुसंबंधी जो यज्ञ है उसको आरंभ किया ॥२३॥ यज्ञ कैसा है कि जिसमें ऋषि समूह स्थित हैं और बहुतसा अन्न, बहुतसी दक्षिणा और सम्पत्तियुक्त इस व्रतका संकल्प पहले गया क्षेत्रमें किया है ॥ २४ ॥ व्रती जो विष्णुदास है वह विष्णुके संतुष्ट करनेवाले यथायुक्त नियमोंको करता हुआ उस समय वहां ही देवालयमें स्थित रहा ॥२५॥ माघ और कार्तिकका व्रत और भलीभांति तुलसीके वनका पालन करना और एकादशीके दिन द्वादशाक्षर मंत्रसे हरिका जप इन सबोंको वह करने लगा ॥२६॥ षोडश उपचारोंसे और गीत आदि मंगल द्वारा वह नित्य विष्णुकी पूजा और इन उक्त

नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुंजन्स्वपञ्छ्वसन् । सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघकार्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि । अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोस्तु चोलेश्वरविष्णुदासयोः । कालो व्यतीयाय महान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेंद्रियकर्मणोस्तदा ॥३०॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ गणावूचतुः ॥ कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विजः । सूपकर्माकरोतावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥ तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाकरोत्तदा । सायंकालार्चनस्यासौ व्रतभङ्गभयाद्द्विजः ॥ २ ॥ द्वितीयेऽह्नि पुनः पाकं कृत्वा यावत्स विष्णवे । उपहारार्पणं कर्तुं तावत्कोऽप्यहरत्पुनः ॥३॥ एवं सप्त दिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप । ततः सविस्मयः सोऽथ मनस्येवंविचार्य च ॥ ४ ॥ अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम । क्षेत्रं संन्यासिनः स्थानं न त्याज्यं मम सर्वथा ॥ ५ ॥ पुनः पाकं विधायात्र भुज्यते यदि चेन्मया । सायंकालार्चनं चैतत्परित्याज्यं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ यदि पाकं विधायात्र भोक्तव्यं वै मया न तत् । अनिवेद्य हरेः सर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते ॥ ७ ॥

व्रतोंको करने लगा ।।२७।। जिसने भोजन करते और शयन करते हुये सदा विष्णु भगवान्हीको स्मरण किया और समदृष्टि होकर सब भूतोंमे स्थित विष्णु भगवान्हीको देखा ।।२८।। वही विष्णुकी प्रसन्नताके निमित्त माघ तथा कार्त्तिकके विशेष नियमोंको और उद्यापनविधिको किया ।।२९।। ऐसे श्रीपति जो भगवान् उनकी आराधना करते और भगवानहीमें निष्ठा है सब इंद्रियोंके कर्म जिनके अन्य व्रतोंमें स्थित जो चोलेश्वर और विष्णुदास हैं भगवान् की आराधना करते बहुत काल व्यतीत हुआ ।। ३० ।। इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायामेकविंशोऽध्यायः ।।२१।। गण बोले–किसी समय विष्णुदास ब्राह्मण है, नित्यविधि जो संध्योपासन पूजा आदि है उसको करके पाकविधि जो रसोई है उसे तैय्यार किया तब कोई अलक्षित पुरुष उसे चुरा लिया ।।१।। तब वह उन पदार्थोंको न देखकर भी सायंकालके पूजन और व्रत में बाधा न हो इस भयसे वह ब्राह्मण फिर पाक न किया ।।२।। दूसरे दिन फिर पाक करके जब वह विष्णुको नैवेद्य लगाने लगा तब कोई अलक्षित पुरुष फिर ले गया ।।३।। हे राजन्! ऐसें सात दिनपर्यन्त कोई उसका पाक हर ले गया उसके बाद विस्मयसहित वह मनमें ऐसा विचार करने लगा ।।४।। आश्चर्यकी बात है कि, नित्य आकर मेरा पाक कौन ले-जाता है? यह क्षेत्र सन्यासीका स्थान है मुझको सर्वथा नहीं त्यागना चाहिये ।।५।। यदि दूसरा पाक बनाकर भोजन किया जाय तो यह सायंकालका पूजन कैसे छोड़ा जाय ।। ६ ।। यदि पाक तैयार करत ही भोजन करे यह भी मुझस न होगा

उपोषितोऽहं सप्ताहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः । अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्यास्य करोम्यहम् ॥ ८ ॥ इति पाकं विधायासौ तत्रैवालक्षितः स्थितः । तावद्ददर्श चाण्डालं पाकान्नहरणोत्थितम् ॥९॥ क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम् । तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपया खिन्नमानसः ॥१०॥ विलोक्यान्नहरं विप्रस्तिष्ठतिष्ठेत्यधावत । कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद् गृहाण भोः ॥११॥ इत्थं ब्रुवन्तं विप्राग्र्यमायान्तं स विलोक्य च । वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्च्छितश्च पपात ह ॥ १२ ॥ भीतं संमूर्च्छितं दृष्ट्वा चाण्डालं स द्विजोत्तमः । वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरवीजयत् ॥ १३ ॥ अथोत्थितं तमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत् । साक्षान्नारायणं देवं शंखचक्रगदाधरम् ॥१४॥ पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्सांकं किरीटिनम् । अतसीपुष्पसंकाशं कौस्तुभोरस्थलं विभुम् ॥१५॥ तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः । स्तोतुं चापि नमस्कर्तुं तदा नालं बभूव सः ॥१६॥ अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा । गन्धर्वाप्सरसश्चापि जगुश्च ननृतुर्मुदा ॥१७॥ विमानशतसंकीर्णं देवर्षिगणसंकुलम् । गीतवादित्रनिर्घोषं तत्स्थानमभवत्तदा ॥ १८ ॥

क्योंकि हरिको विना अर्पण किये वैष्णवोंसे भोजन नहीं किया जाता है ।।७।। सात दिनका उपासा मैं यहां व्रतमें स्थित हूँ अब मैं इस पाककी भली प्रकार रक्षा करूँगा ।।८।। इस प्रकार वह पाक तैयार करके वहां ही छिपके बैठा तब पाकके अन्नको लेजानेके लिये आये हुये एक चाण्डालको देखा ।।९।। क्षुधासे दुर्बल दीन है मुख जिसका और हाड़ तथा चाम है बाकी जिसमें उस चाण्डालको देख वह श्रेष्ठब्राह्मण दयासे मनमें दुःखी हुआ ।।१०।। वह ! ब्राह्मण उस अन्न लेजानेवाले को देखकर ठहर-ठहर ऐसे कहकर दौड़ा और बोला–अन्न रूखा क्या खायगा, यहँ घी ले, एसा कहता वह घीका पात्र ले उसके पीछे गया ।।११।। ऐसे कहता हुआ आया जो वह श्रेष्ठ ब्राह्मण है उसे देख वह चाण्डाल उसके भयसे वेगसे भागा और मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ।। १२ ।। वह ब्राह्मण उस चाण्डालको भयभीत और मूर्च्छित देख शीघ्र वस्त्रोंके अञ्चलसे पवन करने लगा ।।१३।। इसके बाद उठे हुये उसी चाण्डालको विष्णुदास शंख-चक्र गदाधारी साक्षात् नारायण देवको देखा ।। १४ ।। पीले हैं वस्त्र जिनके चार भुजाओं से युक्त, श्रीवत्सका चिह्न है जिनके, मुकुटको धारण किये अतसीके फूलके समान हैं रंग जिनके, कौस्तुभ मणि है वक्षस्थलमें जिनके ऐसे भगवान्को देखा ।।१५।। उनको देखकर वह ब्राह्मण सात्विक भावसे युक्त हो उस समय स्तुति करन और नमस्कार करने में न समर्थ हुआ ।।१६।। इसके बाद उस समय इन्द्रआदिक देवता भी वहीं आय और गंधर्व तथा अप्सरायें आनन्दसे नाचने लगीं ।।१७।। उस समय वह स्थान सैकड़ों विमानोंसे परिपूर्ण और देवता तथा ऋषिगणों से युक्त

ततो विष्णुस्समालिंग्य स्वभक्तं सात्त्विकव्रतम् । सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥१९॥ विमानवरसंस्थं तं गच्छतं विष्णुसन्निधिम् । दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श सः ॥ २० ॥ वैकुण्ठभवनं यान्तं विष्णुदासं विलोक्य सः । स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥२१॥ चोल उवाच ॥ यत्स्पर्द्धया मया चैतद्यज्ञदानादिकं कृतम् । स विष्णुरूपधिग्विप्रो याति वैकुण्ठमन्दिरम् ॥२२ ॥ दीक्षितेन मया सम्यक्क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे बहु । हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः ॥२३॥ नैवाद्यापि स मे विष्णुः प्रसन्नो जायते ध्रुवम् । विष्णुदासस्य भवत्यैव साक्षात्कारं ददौ हरिः ॥ २४ ॥ तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति । भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः ॥ २५ ॥ गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा भागिनेयं स्वमभ्यषिञ्चन्नृपासने ॥ आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः ॥२६॥ तस्मादद्यापि तद्देशे सदा राज्यांशभागिनः । स्वस्रीया एव जायन्ते तत्कृतावधिवार्तिनः ॥२७॥ यज्ञवाटं ततोभ्येत्य वह्निकुण्डाग्रतः स्थितः । त्रिरुच्चैर्व्याजहाराशु विष्णुं संबोधयंस्तदा ॥ २८ ॥

और गाने बजानेक शब्द से शब्दामान हो गया ॥१८॥ उसके बाद विष्णु भगवान् सतोगुणी व्रत है जिसका अपने भक्तको छातीसे लगाकर अपनी समानरूपता दे वैकुण्ठ ले गये ॥१९॥ श्रेष्ठ विमानमें बैठकर विष्णुके समीप जाते हुये विष्णुदासको यज्ञकी दीक्षा से युक्त उस चोलराजा ने देखा ॥२०॥ वैकुण्ठभवनको जाते हुये विष्णुदासको देख वह राजा चोल अपने गुरु मुद्गलको बुलाकर इस प्रकार वचन बोला ॥२१॥ चोल बोला–जिसकी स्पर्द्धासे मैंने, यज्ञ दान किया वह ब्राह्मण विष्णुका रूप धरकर वैकुंठको जा रहा है ॥२२॥ दीक्षित जो मैं हूँ वहां उस वैष्णव क्षेत्रमें अग्निहोत्र किया और दान आदि करके ब्राह्मणोंकी कामना पूरण की गई ॥२३॥ परन्तु अबतक वे विष्णु मेरे ऊपर निश्चयसे प्रसन्न नहीं हुये और विष्णुदासकी भक्ति ही से हरिने दर्शन दिया ॥२४॥ इससे दान और यज्ञ करके विष्णु नहीं प्रसन्न होते हैं अतः भक्तिही उस विभुके दर्शनमें मुख्य कारण है अर्थात् भक्तिहीसे प्रसन्न होते हैं ॥ २५ ॥ गण बोले,–ऐसे कहकर राजा अपने भानजेको राजगद्दीपर बैठाया । बालकपनहीसे यज्ञकी दीक्षामें रहा अतः इस राजाके पुत्र नहीं हुआ ॥२६॥ इस देशमें अबतक चोल राजाद्वारा निश्चित की हुई अवधिको वर्तनेवाले भानजे ही राज्यके अधिकारी हुय हैं ॥ २७ ॥ उसके बाद यह चोल यज्ञस्थानमें जाकर अग्निके आगे खड़ा होकर विष्णुको संबोधित कर बोला ॥२८॥ हे विष्णो ! मन, वाणी और कर्म स स्थिरभक्ति मुझ दीजिये, ऐसे कहकर यह राजा सबक देखते-देखते

विष्णो भक्तिं स्थिरां देहि मनो वाक्कायकर्मभिः । इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥२९॥ मुद्गलस्तु ततः क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम्। ततस्त्वद्यापि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखाभवन् ॥३०॥ तावदा विरभूद्विष्णुः कुंडाग्नौ भक्तवत्सलः । तमालिंग्य विमानग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥३१॥ तमालिंग्यात्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुण्ठ-मंदिरम् । तेनैव सहदेवेशो जगाम त्रिदशैर्वृतः ॥३२॥ यो विष्णुदासस्स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपस्स सुशील-नामा । एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥३३॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिक माहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वास्थौ श्रुतौ मया । किंनु ताभ्यां पुरा चीर्णं यस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥१॥ गणावूचतुः ॥ तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज । कर्दमस्य तु दृष्टेस्तु पुत्रौ द्वौ संबभूवतुः ॥२॥ ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चेति नामतः । तस्यामेवाभवत्पश्चात्कपिलो योगक-र्मवित् ॥ ३ ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णु भक्तिरतौ सदा । तस्मिन्निष्टेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौ बभूवतुः ॥४॥ नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ । साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा ॥५॥ मरुत्तेन कदाचि-द्वावावाहूतौ यज्ञकर्मणि । जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥

अग्निकुण्डमें गिरा ॥२९॥ मुद्गलने क्रोधसे अपनी शिखाको उखार लिया । तबसे अबतक उनके गोत्रमें मुद्गल शिखाहीन होते हैं ॥३०॥ तब ही भक्तवत्सल भगवान् कुंडकी अग्निमें प्रगट हुये और चोलको छातीसे लगाकर श्रेष्ठ विमानमें चढ़े ॥ ३१ ॥ उसको छातीमें लगाकर अपनी सरूपता दे उसक समेत देवताओंसे युक्त देवेश वैकुंठमंदिरको गये ॥३२॥ जो विष्णुदास है वह पुण्यशील है और सुशील नामक चोल राजा दोनों को भगवान्ने अपनी सरूपता पदवी दी ॥ ३३ ॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडित-केशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ धर्मदत्त बोला, जय और विजय मैंने विष्णुके द्वारपार सुने हैं उन्होंने पहले कहा व्रत नियम किया, जिससे वे विष्णुके रूपके धारण करनेवाले हुये ॥१॥ गण बोले– हे ब्राह्मण ! पहले तृणबिंदुकी कन्या देवहूतीमें कर्दम ऋषिकी दृष्टि हीसे दो पुत्र उत्पन्न हुये ॥२॥ जेठेका नाम जय और छोटेका नाम विजय था, पीछे उसी देवहूतीमें योगकर्मको जाननेवाले कपिल मुनि उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ जय और विजय विष्णु की भक्तिमें सदा रत रहे भगवान्में हैं रत इंद्रियोंके समूह जिनके ऐसे दोनों धर्मशील हुये ॥४॥ दोनों सदा अष्टाक्षरी विद्याके जप करते थे और विष्णुके व्रत करनेवाले जो वे दोनों हैं उनको विष्णु सदैव नित्यके पूजनमें साक्षात् दर्शन दिये ॥५॥ कभी वे दोनों मरुत नाम राजा द्वारा यज्ञम बुलाये गये और यज्ञकर्म करानेमें चतुर देवता और ऋषियों से व दोनों पूजित हुये ॥६॥

जयस्तत्राभवद्ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत् । ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥ ७ ॥ मरुत्तोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु । तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥८॥ यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्टयर्थं तौ तदा मुनी । तद्धनं विभजन्तौ तु पस्पर्द्धाते परस्परम् ॥९॥ जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः । विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धं येन तस्य तत् ॥ १० ॥ ततोऽशपज्जयः क्रोधाद्विजय क्षुब्धमानसः । गृहीत्वा न ददास्येतत्तस्माद् ग्राहो भवेति तम् ॥११॥ विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम् । मद्भ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज ॥१२॥ तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम् । शापयोश्च निवृत्तिं तौ ययाचाते रमापतिम् ॥ १३ ॥ जयविजयावूचतुः ॥ भक्तावावां कथं देव ग्राहमातङ्गयोनिगौ । भविष्यावः कृपासिन्धो तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥१४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति । मयापि नान्यथा कर्तुं शक्यते तत्कदाचन ॥ १५ ॥ प्रह्लादवचसा स्तम्भे ह्याविर्भूतो ह्यहं पुरा । तथाऽम्बरीष वाक्येन जातोऽहं दशधा किल ॥१६॥ तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयंकृतौ । लभेतां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥१७॥

वहां उस मरुत्तके यज्ञमें जय तो ब्रह्मा हुये, उसके बाद उस यज्ञको संपूर्ण किया ।। ७ ।। यज्ञके अन्तका स्नान करके मरुत्त उन दोनोंको बहुतसा धन दिया और वे दोनों उस धनको ले अपने आश्रमको गये ।।८।। पृथक् विष्णुके पूजन और तुष्टि अर्थात् प्रसन्नताके लिये उस धनके बांटनेमें वे दोनों परस्पर स्पर्द्धा करने लगे ।। ९ ।। जयने कहा कि समान विभाग करना चाहियें तब विजयने कहा कि यह न होगा जो जिसे पाया है वह उसका है ।। १० ।। उसके बाद जय मनमें क्षोभित हो क्रोधसे विजयको यह शाप दिया कि तू ग्रहण करके इस धनको नहीं देता है उससे तू ग्राह हो ।।११।। विजय उसका यह शाप सुनकर वह उसे भी शाप दिया कि मदसे भ्रांत हो तूने मुझको शाप दिया अतः तू मातंग अर्थात् हाथी हो ।।१२।। तब वे दोनों नित्यके पूजनमें भगवान्को देखकर उन विभुसे यह वृत्तांत कहा और रमापति भगवान्से शापकी निवृत्ति की याचना करने लगे ।।१३।। जय विजय बोले–आपके भक्त हम दोनों कैसे ग्राह और मातंगकी योनिमें जानेवाले होंगे हे कृपासिधु ! अतः हम दोनोंका शाप निवृत्त कीजिये ।।१४।। श्रीभगवान् बोले–मेरे भक्तोंका वचन कभी झठा नहीं होता और मैं भी कदापि उसे अन्यथा करने में समर्थ नहीं हूँ ।।१५।। पहले मैं प्रह्लादके वचनसे खम्भमेंसे प्रगट हुआ और अम्बरीषके वचनसे दशप्रकारसे मैं उत्पन्न हुआ ।।१६।। अतः तुम दोनों अपने हाथसे किये हुये इन शापोंको भोगकर मेरे पदको प्राप्त होगे ऐसा कहकर भगवान् अंतर्धान हो

गणावूचतुः ॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे। जातिस्मरौ च तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥१८॥ कदाचित्स गजस्स्नातुं कार्तिक्यां गंडकीं गतः। तावज्जग्राह तं ग्राहस्संस्मरञ्छापकारणम् ॥१९॥ ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागस्सस्मार श्रीपतिं तदा। तावदाविरभूद्विष्णुः शंखचक्र गदाधरः ॥२०॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वा समुद्धृतौ। दत्त्वा च निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥ २१ ॥ ततः प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमिति स्मृतम्। चक्रसंघर्षणाद्यस्मिन्ग्रावाणोऽपिहि लांछिताः ॥ २२ ॥ ताविमौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा। नित्यं विष्णुप्रियौ द्वाःस्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज ॥ २३ ॥ अतस्त्वमपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः। त्यक्त्वा मात्सर्यदंभौ हि भव त्वं समदर्शनः ॥ २४ ॥ तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव। एकादशीव्रते निष्ठ-स्तुलसीवनपालकः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणानपि गाश्चैव वैष्णवांश्च सदा भज। मसूरिकामारनालं वृन्ताकान्यपि वै त्यज ॥ २६ ॥ एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोः परमं पदम्। प्राप्नोषि धर्मदत्त त्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम् ॥२७॥ तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात्। न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि च ॥ २८ ॥

गये ।।१७।। गण बोले—इसके बाद वे दोनों गंडकी नदीक तटमें ग्राह और मातंग हुये, उस योनिमें भी जातिका स्मरण रहने से विष्णुके व्रतमें तत्पर रहे ।।१८।। किसी समय वह हाथी कार्त्तिक मास में गंडकी नदीमें नहाने गया उसको ग्राह शापका कारण स्मरण करके पकड़ लिया ।।१९।। तब ग्राहसे पकड़ा गया वह हाथी भगवान्‌को स्मरण किया तबहीं शंख चक्र गदाको धारण किये विष्णु प्रगट हुये ।।२०।। तब चक्र चलाकर उन दोनों का उद्धार किया और अपने समान रूप देकर भगवान् उन दोनोंको वैकुंठमें ले गये ।।२१।। तबसे लगाकर वह स्थान हरिक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ जिसमें चक्रके स्पर्शसे पाषाण भी चिह्नयुक्त हो गये ।।२२।। लोकमें वे दोनों जय और विजय नामसे विख्यात हैं। हे ब्राह्मण ! जिनको मैंने पूछा है वे दोनों सदा हरिके प्रिय द्वारपाल हैं ।।२३।। हे धर्मज्ञ ! इससे तुम भी सदा विष्णुके व्रतमें स्थित हो मात्सर्य और दंभको छोड़कर समदृष्टि हो जाओ ।। २४ ।। तुला, मकर और मेष इन राशिमें सूर्यके आने पर सदा प्रातःकाल स्नान किया करो और एकादशीके व्रत में निष्ठा रख और तुलसीवनका पालन करो ।। २५ ।। ब्राह्मण और वैष्णवोंकी सदा सेवा करो और मसूर, कांजी, बैंगन इनका त्याग करो ।।२६।। ऐसे तुम भी देह त्याग के समय उस विष्णुके परमपदको प्राप्त करोगे। हे धर्मदत्त ! जैसे हम प्राप्त हुये हैं ।।२७।। जन्मसे लगाकर किये गये विष्णुके प्रसन्न करनेवाले इस व्रतसे निश्चय ही न तो यज्ञ और न दान अधिक हैं अर्थात् यह व्रत सबसे श्रेष्ठ है ।।२८।। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो जाते। तुमने जगत्‌के गुरु जो भगवान् उनको प्रसन्न करने वाला

धन्योऽसि विप्राग्र्ययतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः । यदर्द्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तया कलहया सार्द्धं वैकुण्ठ-भवनं गतौ ॥३०॥ धर्मदत्तोऽप्यसौ जातप्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः । देहान्ते तद्विभोःस्थानंभार्याभ्यां संयुतोऽभ्य-गात् ॥ ३१ ॥ इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान् । हरिसन्निधिकारिणीं मतिं लभतेऽसौ कृपया जगद्गुरोः ॥ ३२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ पृथुरुवाच ॥ कृष्णावेण्यास्तटात्तस्माच्छिवविष्णुगणैः पुरा । वणिक्छरीरात्कलहा निरस्ता कथिता त्वया ॥१॥ प्रभावोऽयं तयोर्नद्य ः किं वा क्षेत्रस्य तस्य च । तन्मे कथय धर्मज्ञ विस्मयोऽत्र महान्मम ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ कृष्णा कृष्णतनुः साक्षाद्वेण्यां देवो महेश्वरः । तत्सङ्गमप्रभावं तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ ३ ॥ तथापि तत्समुत्पत्तिं कीर्त्तयिष्यामि तां शृणु । चाक्षुषेप्यंतरे पूर्वं मनोर्देवः पितामहः ॥४॥ सह्याद्रिशिखरे रम्ये यजनायोद्यतोऽभवत् । स कृत्वायज्ञसम्भारान्सर्वदेवगणैः सहः ॥ ५ ॥ युक्तो हरिहराभ्यां च तद्गिरेः शिखरं ययौ । भृग्वादयो मुनि-गणा मुहूर्ते ब्रह्मदेवते ॥ ६ ॥

व्रत किया जिसके आधे फलको पानेवाली यह कलहा हमारेद्वारा विष्णुकी सलोकताको प्राप्त हो गई ॥२९॥ नारद बोले,–ऐसें उस धर्मदत्तसे कहकर विमानमें स्थित होकर वे दोनों उस कलहा समेत वैकुंठ भवन में गये ॥ ३० ॥ यह धर्मदत्त उत्पन्न है विश्वास जिसका ऐसा हो उस व्रतमें स्थित हुआ और देहांत के समय दोनों स्त्रियोंसमेत उन विभु अर्थात् समर्थ जो विष्णु हैं उनके स्थानमें पहुँचा ॥३१॥ इस प्राचीन इतिहास को जो कोई मनुष्य सुनेगा या सुनायेगा वह हरिके निकट प्राप्त करनेवाली भक्तिको जगत् गुरु भगवान् की कृपासे प्राप्त करेगा ॥ ३२ ॥ इति श्रीमत्पंडित परमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्म्मद्वि० का० त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ पृथु बोले–उस कृष्णा वेणीके तटसे शिव और विष्णुके गणोंसे वैश्यके शरीरसे कलहा निकाली गई, वह तुमने मुझसे पहले कहा, वह नदियोंका प्रभाव है अथवा उस क्षेत्रका है? हे धर्मज्ञ! मुझसे कहो मुझको बड़ा संदेह है ॥ १ ॥ २ ॥ देवर्षि नारद बोले, कृष्णा– साक्षात् कृष्णका शरीर है और वेणी महादेवका रूप है उन दोनोंके संगमके प्रभावको चतुर्मुख ब्रह्मा भी कहने में समर्थ नहीं है ॥३॥ तो भी मैं उनकी उत्पत्ति कहूँगा तुम सुनो। चाक्षुष मन्वन्तरमें पहले देव पिता-मह रम्य सह्याद्रिक शिखर पर यज्ञ करने के लिये उद्यत हुये। वे यज्ञकी सामग्री इकट्ठी करके देवगणसहित ॥४॥५॥ और

तस्य दक्षाविधानायसमाजं चक्रुरादृताः । अथ ज्येष्ठां स्वरां पत्नी माहूयांचक्रुरञ्जसा ॥७॥ सा शनैरगययौ तावद्भृगुर्विष्णुमुवाच ह ॥ भृगुरुवाच॥ विष्णो स्वरा त्वयाऽऽहूताप्यायाता न कथंचन ॥८॥ मुहूर्तातिक्रमश्चैव कार्यो दीक्षाविधिः कथम् ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ नायाति चेत्स्वरा शीघ्रं गायत्र्यत्र विधीयताम् ॥ ९ ॥ एषापि न भवेत्तस्य भार्या किं पुण्यकर्मणि ॥ नारद उवाच ॥ एवमेव हि रुद्रोऽपि विष्णोर्वाक्यममन्यत ॥१०॥ तच्छ्रुत्वा च भृगोर्वाक्यं गायत्रीं ब्रह्मणस्तदा । निवेश्य दक्षिणे भागे दीक्षा विधिमथाकरोत् ॥ ११ ॥ यावद्दीक्षाविधिं तस्य विधेश्चक्रुर्मुनीश्वराः । तावदभ्याययौ तत्र स्वरा यज्ञस्थले नृप ॥ १२ ॥ ततस्तां दीक्षितां दृष्ट्वा गायत्रीं ब्रह्मणासह । सापत्न्येर्ष्यापरा क्रोधात्स्वरा वचनमब्रवीत् ॥१३॥ स्वरोवाच ॥ अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानांच व्यतिक्रमः । त्रीणि तत्र भविष्यंति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥ १४ ॥ येयं च दक्षिणे भागे उपविष्टा मदासने । तस्माल्लोकैरसदाऽदृश्या गुप्तरूपा तु निम्नगा ॥ १५ ॥ मदासने कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता । तस्मात्सर्वे जडीभूता नदीरूपा भविष्यथ ॥ १६ ॥ ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कंपिताधरा । समुत्थायाशपद्वैर्वार्यमाणापि तां स्वराम् ॥ १७ ॥

विष्णु रुद्रसमेत उस पर्वतके शिखर पर गये । भृगु आदि मुनिगण ब्रह्मदैवत मुहूर्त्तमें ॥ ६ ॥ उनकी दीक्षा के लिये बड़ी प्रीतिसे समाज एकत्र कर बड़ी पत्नी जो वाणीकी देवता है उसे बुलाया ॥७॥ वह धीरे-धीरे जब आई, तब भृगु विष्णुसे बोले। भृगु बोले–हे विष्णु! तुमसे बुलाई गई भी स्वरा क्यों नहीं आती ॥८॥ और मुहूर्त्त निकला जा रहा है, दीक्षाविधि कैसे की जाय ? श्रीविष्णु बोले,–जो शीघ्र स्वरा न आये तो यहां गायत्रीको दीक्षा करनी चाहिये ॥९॥ क्या यह पुण्यकाममें उनकी स्त्री नहीं हैं ? ॥ नारद बोले–ऐसे ही रुद्रने विष्णुके वचनको मान लिया ॥१०॥ उस भृगुके वचनको सुनकर तब गायत्रीको ब्रह्माके दक्षिणभागमें बैठाकर दीक्षाविधिको किया ॥११॥ जिस समय मुनीश्वर ब्रह्माको दीक्षा दे रहे थे उसी समय यज्ञ के स्थानमें स्वरादेवी आई ॥१२॥ गायत्री को ब्रह्माके साथ दीक्षित देख सौतिकी ईर्षामें तत्पर क्रोधसे वचन बोली ॥१३॥ स्वरा बोली,–जहां, नहीं पूजने योग्य पूजे जाते हैं और पूजने योग्य नहीं पूजे जाते हैं वहां दुर्भिक्ष, मरण, भय, ये तीन बातें होती हैं ॥१४॥ जो यह दाहिनी ओर मेरे आसनपर बैठी है, यह लोगोंसे सदा नहीं देखने योग्य गुप्त रूप नदी होगी ॥ १५ ॥ मेरे आसन पर यह छोटी तुम्हारे द्वारा करके बैठाई गई है अतः तुम सब जड़ीभूत हो नदीरूप होगे ॥ १६ ॥ उसके बाद उसके शापको

गायत्र्युवाच॥ तव भर्त्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येष तथा खलु। वृथा शापस्त्वया दत्तो भवत्वमपिनिम्नगा॥१८॥ नारद उवाच ॥ ततो हाहाकृताः सर्वे शिव विष्णुमुखास्सुराः। प्रणम्य दंडवद्भूमौ स्वरां तत्र व्यजिज्ञपन॥१९॥ देवा ऊचुः॥ देवि सर्वे वयं शप्ता ब्रह्माद्या यत्त्वयाधुना। यदि सर्वेंजडीभूता भविष्यामोऽत्र निम्नगाः॥२०॥ तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनश्यति हि निश्चितम्। अविवेककृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिवर्त्यताम्॥२१॥ स्वरोवाच॥ नार्चितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः। तस्माद्विघ्नं समुत्पन्नं मत्क्रोधजमिदं खलु॥२२॥ नापि मद्वचनं ह्येतदसत्यं खलु जायते। तस्मात्स्वांशैर्जडीभूता यूयं भवत निम्नगाः॥२३॥ आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे। भविष्यावोऽत्र भो देवाः पश्चिमाभिमुखावहे॥ २४॥ नारद उवाच॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः॥ जडीभूताभवन्नद्यस्स्वांशैस्सर्वे तदा नृप॥ २५॥ तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेण्यां देवो महेश्वरः। ब्रह्मा ककुद्मिनी चापि पृथगेवाभवन्नृप॥ २६॥ देवाःस्वानपि तानंशाञ्जडीकृत्य विचिक्षिपुः। सह्याद्रिशिखरेभ्यस्ते पृथगासंस्तु निम्नगाः॥ २७॥ देवांशैः पूर्ववाहिन्यो बभूवुः पश्चिमावहाः। तत्पत्न्यंशैः पृथक्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः॥ २८॥

सुनकर कांपते हैं ओठ जिसके ऐसा गायत्री देवताओंके रोकने पर भी देवी को शाप दिया ॥ १७॥ गायत्री बोली,–ब्रह्मा जैसे तेरे पति हैं तैसेही मेरे हैं तैंने वृथा शाप दिया इसलिए तू भी नदी हो जा ॥१८॥ नारद बोले,–उसके बाद शिव विष्णु आदि देवता हाहाकार कर दडवत् प्रणाम करके स्वरा देवीसे प्रार्थना की ॥१९॥ देवता बोले, हे देवी! तैंने ब्रह्मा आदि हम सबको शाप दिया सब जड़ीभूत हो नदी हो जायँगे ॥ २०॥ तो ये तीनों लोक निश्चय ही नाशको प्राप्त होयँगे, तुमने विचार नहीं किया उससे यह शाप लौटने चाहिये ॥२१॥ स्वरा बोली–हे सुरोत्तमो! यज्ञके आदिमें जो तुमने गणेशका पूजन नहीं किया उससे मेरे क्रोधसे उत्पन्न यह विघ्न हुआ ॥२२॥ मेरा यह वचन भी झूठ न होगा उससे अपने अंशोंसे जड़ीभूत हो तुम सब नदी होगे ॥२३॥ हम दोनों सौतेंभी अपने अंशोंसे पश्चिम वाहिनी नदी होंगी ॥२४॥ नारद बोले,–यह उस स्वराके वचन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश जडरूप हो अपने अंशोंसे नदीरूप हुये ॥२५॥ विष्णु कृष्णा हुये, शंकर वेणी और ब्रह्मा ककुद्मिनी नाम नदी हुये। ये सब पृथक् पृथक् हुये ॥२६॥ देवता भी जड होकर अपने अंशों से ब्रह्मादि सब सह्यपर्वतके शिखरोंसे नदी हो पृथक्-पृथक् बहने लगे ॥ २७॥ देवता आदिकोंके अंशस उत्पन्न नदी पूर्ववाहिनी हुईं और उनकी स्त्रियोंके अंशसे

गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा। योगेनाभवतां नद्यौ सावित्रीति प्रथां गते ॥२९॥ब्रह्मणा स्थापितौ तत्र यज्ञे हरिहरावुभौ । महाबलातिबलिनौ नाम्ना देवौ बभूवतुः ॥३०॥ कृष्णोद्भवं पापहरं पुमान्यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या। स्यात्तस्य पुंसः सकलं कुलं यत्तद्दर्शनस्नानगमोद्भवं स्मृतम् ॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्री कृष्ण उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः । संपूज्य नारद सम्यग्विससर्ज तदा प्रिये ॥ १ ॥ तस्माद् व्रतत्रयं ह्येतन्ममातीव प्रियंकरम् माघकार्तिकयोस्त-द्वत्तथैवैकादशीव्रतम् ॥ २ ॥ वनस्पतिनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः । एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम ॥३॥ एतेभ्यो सेवनं यस्तु करोति नियतेंद्रियः । स मे वल्लभतां याति न तथा यजनादिभिः॥४॥ पापेभ्यो न भयं तेन कर्त्तव्य नियमादपि । एतेषां सेवनं कान्ते कुर्वतां मत्प्रसादतः ॥ ५ ॥ सत्यभामोवाच ॥ विस्मापनीयं तन्नाथ यत्त्वया कथितं मम । परदत्तेन पुण्येन कलहा मुक्तिमागता ॥ ६ ॥ इत्थंप्रभावोऽयं मासः कार्तिकस्ते प्रियंकरः । स्वामिद्रोहादिपापानि स्नानपुण्यैर्गतानि यत् ॥ ७ ॥

सैकड़ों हजारों पश्चिमवाहिनी नदी हुईं ॥२८॥ गायत्री और स्वरा दोनों पश्चिमवाहिनी हुईं और सावित्री इस नामसे प्रसिद्ध हुईं ॥ २९ ॥ ब्रह्माने वहां यज्ञमें विष्णु और शिव दोनोंकी स्थापना की वे दोनों महाबल और अतिबल नामसे प्रसिद्ध देवता हुये ॥३०॥ कृष्णा और वेणीके उस उपाख्यानको जो भक्तिसे सुनेगा और सुनायेगा उसको उनके दर्शन और स्नानका फल प्राप्त होगा ॥३१॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसूखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ श्रीकृष्ण बोले, हे प्रिये ! इस प्रकार उनका वचन सुन विस्मित है मन जिनका ऐसे पृथु राजा नारदकी विधिपूर्वक पूजा करके उनको बिदा किया ॥१॥ अतः ये तीनों व्रत मुझे बहुतही प्रिय हैं, माघका, कार्त्तिकका और वैसे ही एकादशीका ॥२॥ वनस्पतियोंमें तुलसी, महीनोंमें कार्तिक, तिथियोंमें एकादशी तथा क्षेत्रमें द्वारका मुझको प्रिय है ॥३॥ इंद्रियोंको वशमें करके जो इनका सेवन करेगा वह मुझको जैसा प्रिय होगा वैसा यज्ञादिकोंसे नहीं होगा ॥४॥ इस पुरुषको नियम करके पापोंसे भय न करना चाहिये, हे प्यारी ! इन तीनोंके सेवन करनेवाले पुरुषोंके पाप मेरे प्रसादसे दूर हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सत्यभामा बोली,–हे नाथ ! जो आप मुझसे आपको ऐसा प्यारा है कि सो स्वामीसे द्रोह आदिके पाप स्नानके पुण्यसे दूर हुये हे प्रभु ! जो पराया पुण्य है वह देनेसे मिल सके है और बिना दिया भी कभी मारगसे वह बड़े आश्चर्य की बात है जो आपने कहा। दूसरे के दिये हुये पुण्य से कलहा मुक्ति को प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ आपको अतिप्रिय इस कार्तिक मास का इतना

दत्तं चलभ्यतेपुण्यं यत्परेणकृतं किल । अदत्तं केन मार्गेण लभ्यते वा नवेति च ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥
अदत्तान्यपि पुण्यानि पापान्यपि तथा नरैः । प्राप्यन्ते कर्मणा येन तद्यथावन्निशामय ॥९॥ देशग्रामकुलानि
स्युर्भागभाजि कृतादिषु । कलौ तु केवलं कर्त्ता फलभुक्पुण्यपापयोः ॥१०॥ अकृतेऽपि हि संसर्गे व्यवस्थे-
यमुदाहृता । संसर्गात्पुण्यपापानि यथा यान्ति तथा शृणु ॥११॥ एकस्था मैथुनाद्योनेरेकपात्रस्थभोजनात् ।
फलार्द्धं प्राप्नुयान्मर्त्यो यथावत्पुण्यपापयोः ॥ १२ ॥ अध्यापनाद्याजनाद्वाप्येकपंक्त्यशनादपि । तुर्यांशं
पुण्यपापानां परोक्षं लभते नरः ॥१३॥ दर्शनश्रवणाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च । परस्य पुण्यपापानां शतांशं
प्राप्नुयान्नरः ॥१४॥ परस्य निन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः । तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः
॥ १५ ॥ कुर्वतः पुण्यपापानि सेवां यः कुरुते नरः । पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः ॥ १६ ॥
तस्य सेवानुरूपं च द्रव्यं किंचिन्न दीयते । सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्य फलभाग्भवेत् ॥१७॥ एकपंक्त्यशनतां
यस्तु लंघेत परिवेषणम् । तत्पुण्यस्य षडंशं तु लभेद्यस्तु विलंघितः ॥ १८ ॥

प्रभाव है कि पति-द्रोह का जो पाप है, वह भी स्नान पुण्य से दूर होता है ॥७॥ दूसरों से दिया गया पुण्य प्राप्त होता है किन्तु विना दिये कैसे प्राप्त हो सकता है, या नहीं प्राप्त नहीं हो सकता है ॥८॥ श्रीकृष्णजी बोले,–विना दिये हुये पुण्य तथा पाप जैसे मनुष्यको कर्म करके मिलते हैं वह यथावत् अर्थात् ठीक-ठीक सुनो ॥९॥ सतयुग आदि अर्थात् कृत, त्रैता और द्वापरमें देश, गांव और कुल पुण्य पापके अंशभागी होते हैं और कलियुगमें तो केवल करनेवाला पुण्य तथा पापका भागी होता है ॥१०॥ संसर्ग न करके भी यह व्यवस्था कही गई और संसर्गसे जैसे पुण्य पाप दूसरे को मिलते हैं वह सुनो ॥ ११ ॥ एक स्थानमें बैठनेसे, भोग करनेसे, विवाह आदि इस संबंधसे और एक पात्रमें भोजन करनेसे मनुष्य पुण्य तथा पापका आधा फल पाता है ॥१२॥ पढ़ानेसे, यज्ञ करनेसे और एक पंक्तिमें भोजन करनेसे मनुष्य पुण्य और पापोंके चतुर्थांश फलको परोक्षमें प्राप्त करता है ॥१३॥ देखने, सुनने और मनके ध्यानसे मनुष्य पुण्य और पापोंका सौवा भाग प्राप्त होता है ॥१४॥ दूसरेकी निंदा, चुगली और धिक्कार देना इन बातोंके करनेसे मनुष्य उसके किये हुये पापोंको लेकर अपने पुण्य देते हैं ॥ १५ ॥ पुण्य और पापोंको करता हुआ जो पुरुष है उसकी स्त्री, नौकर शिष्य तथा दूसरा मनुष्य जो सेवा करता है ॥ १६ ॥ उसकी सेवाके अनुरूप उसको कुछ धन न दिया जाय तो वह मनुष्य सेवाके अनुरूप उसके पुण्यमें अंशभागी होता है ॥ १७ ॥ एकपंक्तिमें

स्नानसंध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाथ भाषते । तत्पुण्यकर्मषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम् ॥ १९ ॥ धर्मोद्देशेन यद्द्रव्यमपरं याचते नरः । तत्कर्मजं यस्य धनं तस्य दत्त्वाप्नुयात्फलम् ॥२०॥ अपहृत्यः परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः । कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम् ॥ २१ ॥ नापाकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः । धनीतत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्यानुरूपतः ॥ २२ ॥ बुद्धिदातानुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ प्रेरकश्चापि ॥ षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥२३॥ प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् । शिष्याद् गुरुः स्त्रियो भर्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥२४॥ स्वपत्युरपि पुण्यस्य योषिदर्द्धमवाप्नुयात्। चेतस्यानुव्रता सा स्याद्भर्तुःसंतुष्टिकारिणी ॥२५॥ परहस्तेन दानानि कुर्वतः पुण्यकर्मणः । विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ २६ ॥ वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत् । आत्मनो वा परस्यापि यदि सेवां न कारयेत ॥ २७ ॥ इत्थं ह्यदत्ता-न्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसंचितानि । कलौ त्वयं वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥ २८ ॥

भोजन करनेवाले मनुष्योंमें जो परोसनेका उल्लघन करता है अर्थात् नहीं परोसता है तो वह उल्लघन किया मनुष्य उसके छठें भागको प्राप्त होता है ॥१८॥ स्नान तथा संध्या आदि करनेमें जो छू ले अथवा बातचीत करे उसे करनेवाला मनुष्य अपने शुभकर्मका छठाभाग उसको निश्चय देता है ॥१९॥ जो पुरुष धर्मके निमित्त दूसरे मनुष्यसे धनकी याचना करता है, वह उसे धन देकर उसके कर्मके फलको प्राप्त करता है ॥२०॥ पराये द्रव्यको लेकर जो कोई पुण्य कर्म करता है तो कर्म करनेवाला पापभागी होता है और धनवालेको कर्मका फल मिलता है ॥२१॥ जो मनुष्य दूसरेके ऋण दिये विना मृत्युको प्राप्त होता है तो वह धनी अपने धनके अनुरूप पुण्य ग्रहण कर लेता है ॥२२॥ बुद्धिको देनेवाला अर्थात् सिखानेवाला, सलाह देनेवाला, इस कर्मकी सामग्री देनेवाला और प्रेरणा करनेवाला मनुष्य पुण्य-पापके छठे भागको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ प्रजाके पुण्यपापका छठा भाग राजा पाता है, ऐसेही शिष्यसे गुरु, स्त्रीसे पति, पुत्रसे पिता, छठा भाग पाता है ॥२४॥ अपने पतिके पुण्यको आधा भाग स्त्री पाती है जो उसकी आज्ञामें रहनेवाली और प्रसन्न करनेवाली हो तो अन्यथा भाग नहीं पायेगी ॥ २५ ॥ जो पुण्यात्मा पुरुष पराये हाथसे दान करता है, तो नौकर और पुत्रको छोड़कर करनेवाला छठा भाग पाता है ॥ २६ ॥ जीविका देनेवाला उसके खानेवाले के पुण्यका छठा भाग पाता है जो अपनी वा औरकी सेवा न कराये तो अन्यथा नहीं ॥ २७ ॥ ऐसे विना दिये भी पराये इकट्ठे किये हुये पुण्य पाप मिलते हैं, परंतु कलयुगमें यह नियम नहीं लागू है, क्योंकि कर्त्ता ही पुण्य पापको

शृणुष्व चास्मिन्नितिहासमुग्रं पुराभवं पुण्यमतिप्रदं च ॥२९॥ इति श्रीपद्म० का० पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
श्रीकृष्ण उवाच पुराऽवन्तीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः ॥ ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः ॥ १ ॥ रस-
कंबलचर्माद्यैः सोऽसत्यानृतवृत्तिकः । स्तेयवेश्या सुरापानयुक्तः सन्तप्त मानसः ॥२॥ देशाद्देशांतरं गच्छन्क्रय-
विक्रयकारणात् । माहिष्मतीं पुरीमागात्कदाचित्स धनेश्वरः ॥ ३ ॥ महिषेण कृता पूर्वं तस्मान्माहिष्मतीति
सा । यस्या वैप्रगता भाति नर्मदा पापनाशिनी ॥ ४ ॥ कार्तिकव्रतिनस्तत्र नानाग्रामागतान्नरान् । स दृष्ट्वा
विक्रयं कुर्वन्मासमेकमुवास ह ॥ ५ ॥ स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात् । ददर्श ब्राह्मणान्स्नाताञ्जपदे-
वार्चने स्थितान् ॥ ६ ॥ कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्च श्रवणे रतान् । नृत्यगायनवादित्रविष्णुश्रवणतत्परान्
॥ ७ ॥ विष्णुमुद्राङ्कितान्कांश्चिन्मालातुलसिधारिणः । ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्रतत्र धनेश्वरः ॥ ८ ॥ नित्यं
परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् । वैष्णवानां तथा विष्णोर्नामसंस्मरणं लभन् ॥ ९ ॥

भोगता है ॥ २८ ॥ इसमें पहले व्यतीत हुआ बहुत उग्र इतिहास पवित्र और मतिको देनेवाला है उसको सुनो ॥ २९ ॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्त्तिकमाहात्म्यटी० भाषार्थ० पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले–पहले उज्जैन नगरीमें ब्राह्मणकर्मसे रहित, पापयुक्त हैं कर्म जिसके और अत्यन्त दुष्ट है बुद्धि जिसकी ऐसा धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था ॥१॥ वह रस, कंबल, चर्म, आदि बेच करके वाणिज्यसे जीविका करता था और चोरी, वेश्यागमन और सुरापान भी सदा करता था और उसका मन संतापयुक्त रहता था ॥२॥ वह धनेश्वर ब्राह्मण खरीदने और बेचनेके निमित्त देशदेशान्तरमें फिरता हुआ माहिष्मती अर्थात् महेसरि नामक नगरीको गया ॥ ३ ॥ महिषद्वारा पहले बसाई जाने के कारण इसका नाम माहिष्मती हुआ, पापको नाश करनेवाली नर्मदा नदी नगरीको परकोटा हो रही है ॥४॥ वहां वह धनेश्वर अनेक ग्रामोंसे आये कार्तिकके व्रत करनेवालोंको देख एक महीना वहां निवास किया ॥ ५ ॥ वह बेचनेके निमित्त नित्य नर्मदा नदीके तीर भ्रमण करता हुआ न्हाये, जप तथा देवताओंकी पूजामें लगे हुये ब्राह्मणोंको देखता रहा ॥ ६ ॥ कोई पुराण पढ़ रहे हैं और कोई पुराणोंके सुननेमें लगे हैं और कोई विष्णुके नृत्य गान और बाजाआदिके सुननेमें लगे हैं ॥ ७ ॥ किसीको विष्णु मुद्रामें अंकित और तुलसीकी माला धारण किये हुये वहां धनेश्वर कौतुकयुक्त मन होकर देखता रहा ॥८॥ नित्य वहां भ्रमण करता हुआ वह धनेश्वर वैष्णवके दर्शन और स्पर्शन-संभाषणसे विष्णुके नामको जो स्मरण है उसे प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ इस

एवं मासं स्थितः सोऽथ कार्तिकोद्यापने विधिम् । क्रियमाणं ददर्शासौ भक्त्या जागरणं हरेः ॥ १० ॥ पौर्णमास्यां ततोऽपश्यद्विप्रगोपूजनादिकम् । दक्षिणाभोजनाद्य च दीयमानं व्रतस्थितैः ॥११॥ ततोऽर्कास्तमये चैव दीपोत्सवविधिं तदा । क्रियमाणं ददर्शासौ प्रीत्यर्थं त्रिपुरद्विषः ॥ १२ ॥ त्रिपुराणां कृतो दाहो यतस्तस्यां शिवेन तु । अस्तु क्रियते तस्यां तिथौ भक्तैर्महोत्सवः ॥ १३ ॥ मम रुद्रस्य यः कश्चिदन्तरं परिकल्पयेत् । तस्य पुण्यक्रियास्सवा निष्फलाः स्युर्न संशयः ॥ १४ ॥ ततः पूजादिकं पश्यन्बभ्राम स धनेश्वरः । तावत्कृष्णाहिना दष्टो विह्वलः स पपात ह ॥ ॥ १५ ॥ जनास्तं पतितं वीक्ष्य परिवब्रुः कृपान्विताः । तुलसीमिश्रितं तोयं तन्मुखे सिषिचुस्तदा ॥ १६ ॥ अथ देहं परित्यक्तं तं बद्ध्वा यमकिंकराः । ताडयन्तः कशाघातैर्निन्युः संयमनीं रुषा ॥ १७ ॥ चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा यमायावेदयत्तदा । आबालत्वात्तेन पुरा कर्म यद्दुष्कृतं कृतम् ॥ १८ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ नैवास्य दृश्यते किंचिदाबाल्यात्सुकृतं क्वचित् । दुष्कृतं शक्यते वक्तुं वर्षेणापि न भास्करे ॥ १९ ॥

प्रकार एक मास स्थित होकर धनेश्वर की जाती हुई कार्तिककी उद्यापन विधिको और भक्तिसहित जो हरिका जागरण है उसे देखा ।।१०।। इसके बाद पौर्णमासीका ब्राह्मण और गौका पूजन आदि जो है उसे और व्रत करनेवाले पुरुषकी दी हुई दक्षिणा को और भोजन आदिको देखा ।। ११ ।। उसके बाद सूर्यके अस्त होनेके समय शिवजीकी प्रसन्नताके निमित्त की हुई जो दीपदानकी विधि है, उसे धनेश्वरने देखा ।।१२।। उस तिथिमें शिवजी द्वारा, त्रिपुरासुरके रचित तीनों पुरोंका दाह किया गया है इससे उस तिथिमें भक्तोंद्वारा बड़ा उत्सव किया जाता है ।।१३।। मुझमें और रुद्रमें जो कोई अन्तर मानेगा उसकी संपूर्ण पुण्यकर्मोंकी क्रिया निस्संदेह निष्फल हो जायँगी ।।१४।। उसके बाद पूजा आदिको देखता हुआ वह ब्राह्मण धनेश्वर भ्रमण कर रहा था, उस समय वह काले सांपसे काटा गया और व्याकुल होकर गिरा ।। १५ ।। मनुष्य उसे गिरा हुआ देख कृपायुक्त हो घेर लिया और उस समय तुलसीयुक्त जल उसके मुखमें डाला ।।१६।। इसके बाद उसकी देह छूट गई तब यमके दूत उसे बांधकर कोडेसे मारते हुए संयमनी नाम जो यमकी पुरी है उसमें क्रोध पूर्वक ले गये ।।१७।। चित्रगुप्त उसे देखकर बालकपनमें जो पहले दुष्कर्म किये हैं उस समय उस सबको यमराजसे निवेदन करने लगे ।। १८ ।। चित्रगुप्त बोले—इसके बालपनसे लगाकर कहीं कोई सुकृत नहीं दीखते हैं। हे यमराज! इसके पापका वर्णन एक वर्षमें भी नहीं हो सकेगा ।। १९ ।। हे महाराज! यह दुष्ट

पापमूर्तिर्ग्यं दुष्टः केवलं दृश्यते विभो । तस्मादाकल्पमर्यादं निरये परिपच्यताम् ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ वज्रतुल्यं वचः क्रोधाद्यमः प्राह स्वकिंकरान् । दर्शयन्नात्मनो रूपं तच्च कालाग्निसंनिभम् ॥२१॥ यम उवाच॥ भोः प्रेतपतयस्त्वेनं वध्यमानं स्वमुद्गरैः । कुंभीपाके क्षिपेच्चासौ दुष्टः कल्पषदर्शनः ॥ २२ ॥ ततो मुद्गरनिर्भिन्न-मूर्द्धानं प्रेतपोऽनयत् । कुंभीपाके च तं क्षिप्त्वा तैलक्वथनशब्दिते ॥२३॥ यावत्क्षिप्तश्च तत्रासौ तावच्छीतलतां ययौ । कुंभीपाके यथा वह्निःप्रह्लादक्षेपणात्पुरा ॥ २४ ॥ तद्द दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रेतपा विस्मयान्विताः । वेगा-दागत्य तत्सर्वं यमायावेदयंस्तदा ॥ २५ ॥ यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा प्रेतपैश्च निवेदितम् । आः किमेतदिति प्रोच्य तमानीय व्यचारयत् ॥ २६ ॥ तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम् । यमेन पूजितः सम्यक्तं दृष्ट्वा वाक्यम-ब्रवीत् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ नैवायं निरयान् भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन । यस्मादन्तेऽस्य संजातं कर्म-यन्निरयापहम् ॥ २८ ॥ यः पुण्यकर्मिणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् । ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥ ॥ २९ ॥

केवल पापहीकी मूर्ति दिखाई देता है इसलिए कल्पपर्यन्त नरकमें पचानेके योग्य है ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण बोले, इसके बाद यमराज वह अपना कालाग्निसमान रूप दिखाकर क्रोधसे अपने दूतोंसे वज्रके समान वचन बोला ॥२१॥ हे प्रेतपतियो ! इसे अपने मुद्गरसे मारते हुये कुंभीपाक नरकमें डालो यह दुष्ट है और इसका दर्शन पापरूप है ॥ २२ ॥ उसके बाद मुद्गरसे फोड़ा गया है मस्तक जिसका ऐसे उस धनेश्वरको प्रेतपति लेकर तेलके औटनेसे है चिरचिराहट जिसमें ऐसे कुंभीपाक नरकमें डाला ॥ २३ ॥ उस कुंभीपाकमें उस धनेश्वरके डालते ही उसकी अग्नि ऐसी शीतलताको प्राप्त हो गई जैसे प्रह्लादके डालनेमें हुई थी ॥२४॥ यह बड़ा आश्चर्य देखकर प्रेतपति विस्मययुक्त हो वहांसे आकर उस समय यमसे कहने लगा ॥२५॥ यमराज भी प्रेतपति द्वारा निवेदन किया जो कौतुक है उसे सुनकर 'आः !' यह कैसी बात है ऐसे कह बुलाकर विचार करने लगा ॥२६॥ उसी समय वहां आये हुये यमराज से भली भांति पूजे हुए नारदमुनि उसे देख हँसकर वचन बोले ॥ २७ ॥ हे अरुणनंदन ! यह नरक उसके भोगने योग्य नहीं है जिसने इस नरक को दूर करनेवाला कर्म किया है ॥२८॥ जो मनुष्य पुण्य करनेवाले मनुष्यका दर्शन, स्पर्श और उनसे संभाषण करते हैं तो वह दर्शन आदिका करनेवाला मनुष्य पुण्यकर्म करनेवालेके पुण्यमेंसे छठा भाग निश्चय

संख्यातीतैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः । कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांश भागयम् ॥३०॥ परिचर्याकरस्तेषां संपूर्णव्रतभागयम् । अत ऊर्ज्जव्रतोद्भूत ण्यसंख्या न विद्यते ॥३१॥ कार्तिकव्रतिनां पुंसां पातकानि महान्त्यपि । प्रदहन्नात्ममहसा विष्णुः सद्भक्तवत्सलः ॥३२॥ अन्ते च नर्मदातोयैस्तुलसीमिश्रितैस्त्वयम् ॥ वैष्णवैः स्नापितो विष्णोर्नामसंश्रावितोऽपि च ॥ ३३ ॥ तस्मान्निर्गतपापोऽयं सद्गतिं प्राप्तुमर्हति । वैष्णवानुग्रही तस्मान्निरये नैव पच्यताम् ॥३४॥ आर्द्रशुष्कैर्यथा पापैर्निरये भोगसन्निधिः । प्राप्यते सुकृतैस्तद्वत्स्वर्गस्य सन्निधिस्तदा ॥ ३५ ॥ तस्मादनार्द्रपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितस्त्वयम् । विलोक्य निरयान् सर्वान् पाप भोगप्रदर्शकान् ॥३६॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते गतवति नारदे स शौरिस्तद्वाक्यश्रवणविबुद्धतत्सुकर्मा । तं विप्रं पुनरनयत् स्वकिंकरेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ ३७ ॥ इति श्रीपद्मपुरा कार्तिकमहात्ये धनेश्वरोपाख्यानेषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

ही पाता है ॥२९॥ धनेश्वरने तो अगणित कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यों के संसर्ग में महीना भर रहा है अतः उनके पुण्य के अंशका यह भागी है ॥ ३० ॥ उनकी परिचर्या करनेवाला यह संपूर्ण अंशका भागी है, कार्तिकके व्रतसे उत्पन्न हुआ जो पुण्य होता है उसकी संख्या नहीं है ॥ ३१ ॥ कार्तिकव्रत करनेवालेके बड़े भारी भी पापको भक्तवत्सल भगवान् अपने तेजसे भस्म कर देते हैं ॥३२॥ अंत समयमें यह धनेश्वर वैष्णवोंसे तुलसीदलोंसे मिले हुये नर्मदाके जलसे स्नान कराया गया है भगवन्नाम सुनाया गया है ॥३३॥ अतः पाप रहित यह धनेश्वर उत्तम गति पानेके योग्य है, वैष्णवोंकी उसके ऊपर अनुग्रह है, उसको यह नरक यातना योग्य नहीं है ॥३४॥ जैसे गीले-सूखे पापों द्वारा नरक भोगना निकटवर्ती होता है, ऐसे ही सुकृत द्वारा स्वर्गकी निकटता प्राप्त होती है ॥३५॥ अतः नहीं है आर्द्र पुण्य जिसके ऐसा यक्षयोनिमें स्थित यह पापोंके भोगके दिखलाने वाले नरकोंको देखकर मुक्ति पाता है ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण बोले, ऐसा कहकर जब नारद चले गये तब नारदके वचनोंके सुननेसे जानें हैं उस धनेश्वरके सुकर्म जिन्होंने ऐसे सूर्यके पुत्र यमराज अपने दूतके द्वारा उस ब्राह्मणको नरक दिखानेकी इच्छासे फिर बुलाया ॥३७॥ इति श्रीमत्पंडितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिविरचितायां कार्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायां भाषार्थबोधिनी-

श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् । दर्शयिष्यंस्तु तान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा ॥१॥ प्रेत उवाच ॥ पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर महाभयान् । येषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिंकरैः ॥२॥ तप्तवालुकनामायं निरयो घोर दर्शनः । यस्मिन्नेते दग्धदेहाः क्रंदन्ते पापकारिणः ॥ ३ ॥ अतिथीन्वैश्वदेवान्ते क्षुत्क्षामानागतांश्च ये । न पूजयन्ति ते ह्येते पच्यंते स्वेन कर्मणा ॥४॥ गुर्वग्नीन्ब्राह्मणान्गाश्च ये वेदान्मूर्द्धाभिषिक्तकान् । ताडयन्ति पदा ये वै ते निर्दग्धांघ्रयस्त्विमे ॥५॥ षड्भेदैस्त्वेष निरयो नानापापैः प्रपद्यते । तथैवान्धतमिस्रोऽयंद्वितीयो निरयो महान् ॥ ६ ॥ पश्य सूचीमुखैर्देहा भिद्यंते पापकर्मणाम् । कृमिभिर्घोरवक्त्रैश्च तमोतक्यादिभिर्द्विज ॥ ७ ॥ असावपि स्थितः षोढा श्वगृध्रपक्षिभिस्तथा । परमर्मभिदो मर्त्याः पच्यंते तेषु पापिनः ॥ ८ ॥ तृतीयः क्रकचा ह्येष निरयो घोरदर्शनः । यत्रेमे क्रकचैर्मर्त्याः पच्यंते पापकारिणः ॥ ९ ॥ असिपत्रवनाद्येश्च षट्प्रकारोऽप्ययं स्थितः । पत्नीपुत्रादिभिर्येर्वैवियोगं प्रापयंति इह ॥ १० ॥ इष्टैरन्यैरपि नरान्पच्यंते त इमे नराः । असिपत्रैश्छिद्यमाना वृकभीत्यापलायिताः ॥ ११ ॥

समाख्यायां षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ श्रीकृष्ण बोले,–उसके बाद यमकी आज्ञा करनेवाला प्रेतपति सब नरकोंके दिखानेकी इच्छासे धनेश्वरको लेजाकर वचन बोला ॥१॥ प्रेतपति बोले,–हे धनेश्वर! ये जो भयावने नरक हैं, जिनमें पापी पाप करनेवाले मनुष्य यमके दूतसे पचाये जाते हैं॥ २ ॥ भयानक है दर्शन जिसका ऐसा यह तप्तवालुक नाम नरक है जिसमें अंत समय जली है देह जिनकी ऐसे पापी चिल्ला रहे हैं॥ ३ ॥ भयानक हैं बलिवैश्वदेव कर्म अर्थात् भोजन समय क्षुधासे पीडित आये अभ्यागतका पूजन जो मनुष्य नहीं करते हैं, वे इस नरकमें अपने कर्मद्वारा पचाये जाते हैं ॥ ४ ॥ गुरु, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वेद, और क्षत्रियको जो पादसे ताडन करते हैं वे मनुष्य जले हुये पापोंके ये हैं ॥५॥ उनके नरकके छः भेद हैं–यह नाना प्रकारके पापोंसे मिलते हैं ऐसेही अंधतामिस्त्र नामक यह दूसरा बड़ा नरक है॥६॥ सुईके समान पैने हैं मुख जिनके और घोर हैं मुख जिनके ऐसे तमोतक्यादि कीड़ों द्वारा पापी मनुष्यके देह भेदन किये जाते हैं ॥ ७ ॥ यह भी छः प्रकारका है–कुत्ते, गीध, आदि पक्षियों द्वारा पराये मर्मके भेदन करनेवाले पापी नरक भोग करते हैं ॥८॥ तीसरा यह क्रकचनाम घोर दर्शन नरक है, जिसमें ये पापी मनुष्य क्रकच जो आरा है उससे चीरे जाते हैं ॥९॥ यह क्रकचनामक नरक भी असिपत्रवनादिक भेद से छः प्रकारका है, जसमें स्त्री-पुरुष आदिकोंका वियोग कर देनेवाले दुःख भोगते हैं ॥१०॥ प्रिय तथा औरोंसे जो वियोग कराते हैं वे मनुष्य

पच्यन्ते पापिनः पश्य क्रन्दमाना इतस्ततः । अर्गलाख्यो महारौद्रश्च तुर्यो निरयो ह्ययम् ॥ १२ ॥ पश्य नानाविधैः पाशैराबध्य यमकिंकरैः । असावपि च षड्भेदो वधवेधादिभिः स्मृतः ॥१३॥ कूटशाल्मलिनामानं निरयं पश्य पंचमम् । यत्राङ्गारनिभाह्येताः शाल्मलीलोमसन्निभाः ॥१४॥ यत्र षोढाभिपच्यन्ते यातनाभिर्मिजनाः । परदारपरद्रोहपरद्रव्यगताश्च ये ॥१५॥ रक्तपूयमिमं पश्य षष्ठं निरयमुल्बणम् । अधोमुखाविपच्यन्ते यत्र पापकृतो नराः ॥१६॥ अभक्ष्यभक्षका निन्दापैशुन्याभिरता इमे । भज्माना वध्यमानाः क्रन्दन्ते भैरवान्रवान् ॥१७॥षट् प्रकारोविगन्धाद्यैरसावपि हि संस्थितः। कुंभीपाकः सप्तमोऽयं निरयो घोर दर्शनः॥१८॥ षाढा तैलादिभिर्द्रव्यैर्धनेश्वर विलोकय । महापातकिनो यत्र पीडयन्ते यमकिङ्करैः ॥१९॥ बहून्यब्दसहस्राणि भुञ्जते यमयातनाः । चत्वारिंशन्मितानेतान्द्व्यधिकान्पश्य रौरवान् ॥ २० ॥ अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम् । आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ॥ २१ ॥ चतुरशीति संख्याकैः पृथग्भेदानवस्थितान् । अप्रकीर्णं तु पांक्तेयं मलिनीकरणं तथा ॥ २२ ॥

इसमें दुःख पाते हैं। असिपत्र अर्थात् खड्गसे काटे गये और भेडियेके भयसे भागे हुये इत उत चिल्लाते हुये पापी मनुष्य दुःख पाते हैं। अर्गलनाम यह महाघोर चौथा नरक है ॥ ११ ॥ १२ ॥ देखो नाना प्रकारकी फांसियोंसे बांधकर यमदूत ताड़ना दे रहे हैं यहां भी मारनेके भेदसे छः हैं ॥१३॥ कूट, शाल्मलि नाम पांचों नरकको देखो जिसमें अंगारोंके समान सेमलकेसे कांटे हैं ॥१४॥ जिसमें पराई स्त्रीमें रत पराये द्रोहके करने वाले और पराये द्रव्यके लेनेवाले लोग यमकी यातनाओंसे छः प्रकारके दुःख भोगते हैं ॥ १५ ॥ रक्तपूय अर्थात् जिसमें रुधिर और पीव भरा है, ऐसे इस छठे उल्बण नरकको देखो जिसमें पापी मनुष्य नीचे को मुंह करके लटकाये जाते हैं ॥ १६ ॥ जो अभक्ष्य वस्तुओंके खानेवाले हैं जो निन्दा तथा चुगली करनेमें तत्पर रहते हैं, वे मर्दन करने और मारे जाने पर बड़े भयानक शब्दोंको कर रहे हैं ॥ १७ ॥ यह भी दुर्गन्ध आदिसे छः प्रकारका है और घोर है दर्शन जिनका ऐसा यह सातवां कुम्भीपाक नाम नरक है ॥१८॥ हे धनश्वर! यह तैल आदि वस्तुओं से छः प्रकारका है उसे तुम देखो इसमें महापातकी नर यमदूत से दण्ड दिये जाते हैं अर्थात् तैल आदि में औटाये जाते हैं ॥१९॥ हजारों वर्षपर्यन्त इनमें प्राणी बहुतसी यमकी यातनाओंको भोगते हैं। दो ऊपर चालीस इससे (४२) प्रमाण जिनको ऐसे जो ये रौरव नरक हैं उनको देखो ॥२०॥ विना कामनाके जो होता है वह सूखा कहलाता है और जो कामनासे हो वह आर्द्र अर्थात् गीला कहा जाता है ऐसे गीले और सूखके भेदोंसे पाप दो प्रकारके हैं ॥ २१ ॥ चौरासीकी गिन्तीमें नरकोंके अलग-

जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातकसंज्ञकम् । अतीपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥ २३ ॥ एभिः सप्तसु पच्यंते निरयेषु यथाक्रमम् । कार्तिकव्रतिभिः पुंभिर्यत्संसर्गोऽभवत्तव ॥ २४ ॥ तत्पुण्योपचयात्तत्र निर्हता निरयाः खलु ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाहरत् । धनेश्वरं यक्षलोके यक्षेशोऽभूत्स तत्र ह ॥२६॥ धनदस्यानुगस्सोऽयं धनयक्षेति विश्रुतः । यदाख्यया ऽकरोत्तीर्थमयोध्यां तु गाधिजः ॥ २७ ॥ एवं प्रभावः खलु कार्तिकेयो मुक्तिप्रदो भुक्तिकरश्च यस्मात् । यो हन्त्यनेकार्जितपातकानि कर्तुश्च संदर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियाम् । सायं संध्याविधिं कर्तुं जगाम च निजं गृहम् ॥ १ ॥ एवंप्रभावः प्रोक्तोऽयं कार्तिकः पापनाशनः । विष्णुप्रियकरोऽत्यन्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ २ ॥ हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम् । उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके ॥ ३ ॥

अलग भेद हैं, अप्रकीर्ण पांवतयर्मलिनीकरण ऐसेही जातिभ्रंशकर और उपपातक नाम हैं जिनका वे और अतिपाप महापाप ये सात प्रकारके पाप हैं, इन सातों द्वारा सात नरकमें प्राणी जाते हैं ॥२२॥ २३॥ तुम्हारा जो कर्तिकव्रत करनेवाले पुरुषसे संसर्ग हुआ उसके पुण्यसमूहसे तुम्हारी नरक यातना दूर हो गयी ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले, ऐसे नरकोंको दिखाकर प्रेतप उस धनेश्वरको यक्षोंके लोकमें ले गया, वहां वह यक्षोंका स्वामी हुआ ॥२६॥ यह धनेश्वर धनयक्ष नामसे प्रसिद्ध कुबेरका अनुचर हुआ जिसके नामसे अयोध्यामें विश्वामित्रने तीर्थ बनाया ॥२७॥ ऐसा है प्रभाव जिसका ऐसा यह कार्त्तिकमास भुक्तिको देनेवाला और मुक्त करनेवाला है जिससे पापको करनेवाला मनुष्य भी कार्त्तिक व्रत करनेवालेके दर्शनसे मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्त्तिकमाहात्म्यटीकायां भाषार्थबोधिनीसमाख्यायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ सूत बोले,–वासुदेव अतिप्यारी सत्यभामासे इस प्रकार कहकर सायंकालकी संध्याकी जो विधि है, उसके करने के लिये अपने घर गये ॥ १ ॥ ऐसा है प्रभाव जिसका और पापका नाश करनेवाला कार्त्तिक मास मैंने तुमसे कहा, यह कार्त्तिकमास विष्णु भगवान्‌की प्रीतिको करनेवाला है और मुक्ति मुक्तिरूपी जो फल है उसको देनेवाला है ॥ २ ॥ हरिका जागरण करना, प्रातःकाल स्नान करना । और तुलसी सेवन करना और दीपदान करना ये कार्तिकके व्रत हैं ॥३॥ ये पूर्व कहे हुये

पंचकैर्व्र कैरेभिः संपूर्णं कार्तिव्रतम् । फलमाप्नोति तत्प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ विष्णुप्रियोऽतिफलदः प्रोक्तोऽयं रोमहर्षणः । कार्तिकप्रभवः सम्यक्सेतिहासोऽतिविस्मितः ॥ ५ ॥ अवश्यं च तथा कार्यः पापदुखनिवृत्तये । मोक्षार्थिभिर्नरैः सम्यग्भोगकामैरथापवा ॥६॥ एवं स्थितो यदा कश्चिद् व्रतस्थस्संकटे स्थितः । दुर्गारण्य स्थितो वापि व्याधिभिः परिपीडितः ॥७॥ कथं तेन प्रकर्तव्यं कार्त्तिकव्रतकं शुभम् । इदमत्यंतफलदं न त्याज्यं सर्वथा नरैः ॥८॥ सूत उवाच ॥ एवमापद्गतो यस्तु नरो नित्यं दृढव्रतः । विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ॥ ९ ॥ शिवविष्णु गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि । दुर्गाटव्यां स्थितो यस्तु यदि वापद्गतो भवेत् ॥१०॥ कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ॥११॥ विष्णुनामप्रबन्धानां गायनं विष्णुसंनिधौ । गोसहस्रप्रदाने तत्फलमाप्नोति मानवः ॥ १२ ॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाचपेयफलं लभेत् । सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

जो पांच प्रकारके व्रत हैं उनसे जो फल प्राप्त होता है वह भुक्ति तथा मुक्तिको देनेवाला है ॥४॥ ऋषि बोले,–विष्णुका प्यारा, अत्यन्त फलको देनेवाला, और सुननेसे रोमांचित करनेवाला विस्मययुक्त यह कार्त्तिकमासका इतिहास आपने वर्णन किया ॥ ५ ॥ यह कार्त्तिकमासका व्रत पापोंके तथा दुःखके दूर करनेके लिये, मोक्षके चाहनेवाले तथा भोगोंके चाहनेवाले पुरुषों द्वारा अवश्य करने योग्य है ।।६ ॥ ऐसे व्रतस्थित कोई मनुष्य संकटमें पड़ जाय अथवा कठिन वनमें स्थित हो अथवा रोगोंसे पीड़ित हो ॥७॥ तो उस मनुष्य द्वारा यह शुभ कार्त्तिकका व्रत कैसे किया जाय? अत्यन्त फलको देनेवाला यह व्रत मनुष्यद्वारा सर्वथा याग नहीं करने योग्य है ॥८॥ सूत बोले, ऐसे सदा दृढ़व्रत करनेवाला पुरुष यदि आपत्तिमें पड़ जाय तो विष्णु या शिवके मंदिरमें हरिका जागरण करे ॥९॥ यदि शिव अथवा विष्णुका भी मंदिर न हो तो किसी देवताके स्थानमें करे। यदि कठिन वनमें स्थित हो या आपत्तिमें हो ॥१०॥ तो पीपलके नीचे अथवा तुलसीके वनमें जागरण करे ॥११॥ विष्णुके समीप विष्णुके प्रबंधके नामोंको गान करनेसे मनुष्य हजार गोदानके फलको प्राप्त करता है ॥१२॥ बाजा बजानेवाला पुरुष वाजपेय यज्ञके

आपद्गतो यदाप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः। व्याधितो वा यथा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नापि मार्जनम् ॥ १४ ॥ उद्यापन विधिं कर्तुमशक्तो यो व्रते स्थितः। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥१५॥ अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपो ब्राह्मणो भुवि। तत्संतुष्ट्या तु संतुष्टः सर्वदा स्यान्न संशयः॥ १६॥ अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत्। तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वात्यादिभ्यः प्रयत्नतः॥ १७॥ अभावे तुलसीनां च वैष्णवं पूजयेद् द्विजम्। यस्मात्सन्निहितो विष्णुस्स्वभक्तेष्वेव सर्वदा ॥ १८ ॥ सर्वाभावे व्रती कुर्याद्ब्राह्मणानां गवामपि । सेवामश्वत्थवटयोर्व्रतपूरणहेतवे ॥१९॥ ऋष ऊचुः ॥ कथं त्वयाऽश्वत्थवटौ गोब्राह्मणसमौ कृतौ। सर्वेभ्यस्तु तरुभ्यस्तौ कस्मात्पूज्यतरौ स्मृतौ ॥२०॥ सूत उवाच ॥ अश्वत्थरूपी भगवान्विष्णुरेव न संशयः। रुद्ररूपी वटस्तद्वत्पालाशो ब्रह्मरूपधृक् ॥२१॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। एतत्कथय धर्मज्ञ संशयोऽत्र महान् हि नः ॥२२॥ सूत उवाच॥ पार्वतीशिवयोर्देवाः सुरतं कुर्वतोः किल। अग्निं ब्राह्मणरूपेण गतश्च विघ्नकृत्पुरा ॥२३॥ ततश्च पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः। रतोत्सवसुखभ्रंशात्कंपमाना रुषा तदा ॥ २४ ॥

फलको प्राप्त होता है और नाचनेवाला संपूर्ण तीर्थोंके स्नान का जो फल है उसे प्राप्त होता है ।। १३ ।। यदि आपत्तिम पड़ा हुआ मनुष्य कहीं जल न पावे अथवा रोगी हो तो विष्णुके नामसे मार्जन करे ।। १४ ।। यदि व्रतमें स्थित मनुष्य उद्यापनविधि करनेमें समर्थ न हो तो व्रतके पूर्ण होनेके लिये अंतम ब्राह्मणोंको जिमावे ।।१५।। पृथ्वीमें ब्राह्मण जो अव्यक्तरूप भगवान् हैं उनका स्वरूप हैं, उन ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेसे भगवान् सदा संतुष्ट होते हैं। इसमें संदेह नहीं है ।।१६।। यदि दीपदान करने में असमर्थ हो तो दूसरेके दीपकको चैतन्य कर दे वायु आदिसे उसकी रक्षा यत्नसे करे ।।१७।। यदि तुलसी पूजन करनेको न मिले तो वैष्णव ब्राह्मणका पूजन करे, क्योंकि विष्णु अपने भक्तोंके सदा निकट रहते हैं ।।१८।। इन सबोंके अभावमें ब्राह्मण और गौओंका पूजन व्रती करे अथवा व्रतके पूर्ण होनेके निमित्त पीपल और बड़का पूजन करे ।। १९ ।। ऋषि बोले,—आपने पीपल और बड़को गौ और ब्राह्मणके समान क्यों कहा, और सब वृक्षोंमें वे दोनों क्यों अधिक पूजने योग्य हैं? ।।२०।। सूत बोले, पींपलका रूप भगवान् विष्णु हैं इसमें संदेह नहीं है और रुद्रका रूप बड है, वैसे ही ब्रह्माका रूप धारण करनेवाला ढाक है ।। २१ ।। ऋषि बोले,—ब्रह्मा और शिव ये कैसे वृक्षपनको प्राप्त हुये? हे धर्मज्ञ! यह कहो, इसमें निश्चय करके हमको बड़ा संदेह है ।। २२ ।। सूत बोले एक समय शिव और पार्वती भोग कर रहे थे तब सब देवता और अग्नि ब्राह्मणका रूप धरकर गये और विघ्न करने लगे ।।२३।। भोगके सुखमें विघ्न होनेसे क्रोध से कांपती हुई पार्वती देवताओंको शाप दिया ।। २४ ।। पार्वती

पार्वत्युवाच ॥ कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरते सुखम् । तद्विघ्नकारिणो देवाद्युद्धिदत्वमवाप्स्यथ ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं सा पार्वती देवाञ्छशाप क्रुद्धमानसा । तस्माद्वृक्षत्वमापन्नास्सर्वे देव गणाः किल ॥२६॥ तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ बभूवतुर्वैधिवटौ मुनीश्वराः। बोधिस्त्वगादर्किदिनं विनैवाऽसंस्पृश्यता मार्कजदृष्टियोगात् ॥ २७ ॥ इति श्रीकार्तिक माहात्म्ये कृष्णसत्यभामासंवादे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥ ऋषय ऊचुः ॥ अपृश्यत्वं कथं प्राप्तः सूत बोधितरुस्त्वम् । स्पृश्यत्वं हि कथं यातस्तथायं शनिवासरे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्यापुःसुरोत्तमाः । श्रियं च कौस्तुभं तेषां विष्णवे प्रददुः सुराः ॥२॥ यावदंगीचकारासौ लक्ष्मी भार्यार्थमात्मनः । तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिनम् ॥ ३ ॥ लक्ष्मीरुवाच । असंस्कृत्य कथं ज्येष्ठां कनिष्ठां परिणीयते । तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन ॥ ४ ॥ विवाह्य नय मां पश्चादेषःधर्मः सनातनः ॥ सूत उवाच । इति तद्वचनं श्रुत्वा स विष्णुर्लोकभावनः ॥ ५ ॥ उद्दालकाय मुनये सुदार्घतपसे तदा । आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल ॥ ६ ॥

बोली, ये कृमि कीट आदि भी भोगके सुखको जानते हैं, उस भोग सुखमें विघ्न करनेवाले तुम सब देवता वृक्षोंके रूपको प्राप्त होगे ॥२५॥ सूत बोले,–इस प्रकार पार्वती क्रोधित हो देवताओंको शाप दिया जिससे निश्चय करके सब देवता समूह वृक्ष हो गये ॥२६॥ हे मुनीश्वर ! उससे ये दोनों विष्णु और महादेव पीपल और बड़ रूपमें हुये और बोधि जो पीपल है वह शनैश्चरके दिनको छोड़कर शनैश्चरकी दृष्टिके योगसे (अछूता) अयोग्य हुआ अर्थात् शनैश्चरको पीपल छूना चाहिये और दिनों में नहीं ॥ २७ ॥ इति श्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदीविरचितायां कार्त्तिकमाहात्म्यभाषाटीकायांभाषार्थबोधिनीसमाख्यायामष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥ ऋषि बोले–हे सूत ! यह बोधितरु अर्थात् पीपलका वृक्ष क्यों छूने योग्य न हुआ और यह शनिवार को क्यों छूने योग्य हुआ वह कहो ॥१॥ सूतजी बोले–समुद्रके मथन करनेसे देवताओंने जो रत्न पाये उनमेंसे देवताओंने लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि विष्णुको दे दी ॥२॥ जब विष्णु अपनी भार्याके रूपमें लक्ष्मीको अंगीकार करने लगे तब लक्ष्मी उन चक्रपाणिसे प्रार्थना करने लगीं ॥ ३ ॥ लक्ष्मी बोली–जेठी बहिनका संस्कार अर्थात् विवाह किये विना छोटीको कैसे व्याहते हो ? अतः हे मधुसूदन ! मेरी बड़ी बहिन अलक्ष्मीका व्याह करो ॥ ४ ॥ मेरी बड़ी बहिन अलक्ष्मीका व्याह करके ही मुझे ले चलो, यह सनातन धर्म है । सूत बोले–इस प्रकार लक्ष्मीके वचन सुन लोकभावन भगवान् ॥५॥ बड़ा है तप जिनका ऐसे उद्दालक मुनिको अपने वचनके अनुरोधसे निश्चय उस अलक्ष्मीको दिया ॥६॥ स्थूल है मुख जिसका, श्वेत हैं दांत जिसके, जीर्ण शरीरको

स्थूलास्थां शुभ्रदशनां जरठीं बिभ्रतीं तनुम् । विततारक्तनयनां रूक्षगात्रशिरोरुहाम् ॥ ७ ॥ स मुनिर्विष्णु-वाक्यात्तामंगीकृत्य स्वमाश्रमम् । वेदध्वनिसमायुक्तमानयामास धर्मवित् ॥ ८ ॥ होमधूमसुगन्धाढ्यं वेदघोष-निनादितम् । आश्रमं तं समालोक्य व्यथितासाऽब्रवीदिदम् ॥ ९ ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ नहि वासोऽनुरूपोऽयं वेद-ध्वनियुतो मम । न चागमिष्ये भो ब्रह्मन्नयस्वान्यत्र मां ध्रुवम् ॥ १० ॥ उद्दालक उवाच ॥ कथं नायासि कान्ते वै वर्तते संमतं तव । तव योग्या च वसतिः का भवेच्च वदस्व तत् ॥ ११ ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ वेदध्वनिर्भ-वेद्यस्मिन्नतिथीनां च पूजनम् । यज्ञदानादिकं वापि नैव तत्र वसाम्यहम् ॥ १२ ॥ परस्परानुरागेण दांपत्यं यत्र वर्तते । पितृ देवार्चनं यत्र तत्र नैव वसाम्यहम् ॥ १३ ॥ उद्यमी नीतिकुशलो धर्मयुक्तः प्रियंवदः । गुरु पूजारतो यत्र तस्मिन्नैव वसाम्यहम् ॥ १४ ॥ रात्रौ दिवा गृहे यस्मिन्दंपत्योः कलहो भवेत् । निराशा यांत्य-तिथयस्तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ १५ ॥

धारण किये हैं। और फटेसे तथा लाल हैं नेत्र जिसके, रूखे हैं शरीर और बाल जिसके ऐसी जो अलक्ष्मी है ॥७॥ उसे वे धर्मज्ञ उद्दालक मुनि विष्णुके वाक्यसे अंगीकार करके वेदध्वनि युक्त अपने आश्रम में ले आये ॥८॥ होमके धूमकी सुगंधि से युक्त और वेदोंके पढनेके शब्द से शब्दायमान आश्रमको देख दुःखित हो वह वचन बोली ॥९॥ ज्येष्ठा बोली,–वेदध्वनिसे युक्त यह वास मेरे योग्य नहीं है। हे महाराज! मैं यहां नहीं आऊँगी निश्चय करके मुझे अन्यत्र ले चलो ॥१०॥ उद्दालक बोले–हे कांते! तू क्यों नहीं आती, तेरा यहीं निश्चय है तो तेरे योग्य कौनसा स्थान है वह कथन कर ॥११॥ ज्येष्ठा बोली,–जहां वेदोंकी ध्वनि होती है अभ्यागतोंका पूजन होता है और यज्ञ दान आदि होता है वहां मैं नहीं वास करूंगी ॥ १२ ॥ जहां स्त्री और पुरुष परस्पर प्रीतिसे रहते हैं और पितृ तथा देवताओंका पूजन जहां होता है मैं वहां नहीं बास करूँगी ॥ १३ ॥ जहां उद्यम करनेवाला, नीतिमें चतुर, मधुर बोलनेवाले और गुरुपूजा करनेवाले मनुष्य रहते हैं वहां मैं नहीं रहूंगी ॥१४॥ जिस घरमें रातदिन स्त्री और पुरुषमें कलह होती है और अभ्यागत निराश हो जाते हैं उस स्थानमें मेरी प्रीति है ॥१५॥

वृद्धसज्जनमित्राणां यत्र स्यादपमाननम् । निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र नित्यं वसाम्यहम् ॥१६॥ दुराचार रता यत्र परद्रव्यापहारिणः ॥ परदाररताश्चापि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥१७॥ गोवधो मद्यपानं च यत्र संजायतेऽनिशम् । ब्रह्महत्यादिपापानि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत् । उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाच ह ॥१९॥ उद्दालक उवाच ॥ अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन्नलक्ष्मीस्त्वं स्थिरा भव । आवासस्थानमालोक्य यावद्यायाम्यहं पुनः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालकस्तदा । प्रतीक्षंती चिरं तत्र यावत्तं न ददर्श सा ॥२१॥ तदा रुरोद करुणं भर्तुस्त्यागेन दुःखिता । तत्तस्या रुदितं लक्ष्मीर्वैकुंठभवनेऽशृणोत् ॥ २२ ॥ तदा विज्ञापयामास विष्णुमुद्विग्नमानसा ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ स्वामिन्मद्भगिनी ज्येष्ठा भर्तुस्त्यागेन दुःखिता ॥ २३ ॥ तामाश्वासयितुं याहि कृपालो यद्यहं प्रिया ॥ सूत उवाच ॥ लक्ष्म्या सह ततो विष्णुस्तत्रागच्छत्कृपानिधिः ॥ २४ ॥

जहां वृद्ध मनुष्योंका और सज्जनोंका अपमान होता है तथा कठोर भाषण होता है वहां मैं सदा रहती हूँ ॥१६॥ जहां दुराचरण करते हैं, पराये द्रव्यको हर लेते हैं और पराई स्त्रियोंसे रत रहते हैं उस स्थानमें मेरी प्रीति है ॥१७॥ जहां सदा गोवध और मद्यपान होता है एवं ब्रह्महत्या आदि पाप होते हैं उस स्थानमें मेरी प्रीति है ॥१८॥ सूत बोले,–इस प्रकार उस अलक्ष्मी के वचन सुनकर मलिनमुख हो उद्दालक मुनि उस अलक्ष्मीसे बोले ॥ १९ ॥ हे अलक्ष्मी ! जबतक मैं तुम्हारे रहनेके स्थानको देखकर फिर आऊँ तबतक तुम इस वृक्षके नीचे स्थिर रहो ॥ २० ॥ सूत बोले–ऐसे उसको वहां बैठाकरके तब उद्दालक चले गये तब वह बहुत देरतक उनका मार्ग देखती हुई जब उनको आता हुआ न देखा ॥ २१ ॥ तब पतिके त्यागनेसे दुःखित हो शोकसे रोदन करने लगी उसके उस रोदनको लक्ष्मीने वैकुण्ठ भवनमें सुना ॥२२॥ तब लक्ष्मी उद्विग्न मन होकर विष्णुसे प्रार्थना करने लगीं लक्ष्मी बोली–हे स्वामी ! मेरी जेठी बहिन भर्ताके छोड़नेसे दुःखित है ॥२३॥ हे दयालु ! यदि मैं तुम्हें प्रिय हूँ तो तुम उसको धीरज देनेके लिये जाओ । सूत बोले उसके बाद कृपानिधि विष्णु लक्ष्मी सहित वहां आये ॥२४॥ उस अलक्ष्मीको

आश्वासयन्नलक्ष्मीं तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ विष्णुरुवाच ॥ अश्वत्थमूलमाश्रित्य तदाऽलक्ष्मि स्थिरा भव ॥ २५ ॥ ममांशसंभवो ह्येष आवासस्ते मया कृतः । प्रत्यब्दं येऽर्चयिष्यंति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः ॥२६॥ तेष्वेव श्रीः कनिष्ठा ते सदा तिष्ठत्वनामया । अङ्गनाभिस्सदा पूज्या विविधैर्बलिभिस्तदा ॥२७॥ पुष्पधूपादिभिश्चैव तेषां लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ सूत उवाच ॥ कृष्णसत्योश्च संवादं नारदस्य पृथोस्तथा ॥२८॥ अन्यत्किं प्रष्टुकामाः स्थ वदामि च सुविस्तरम् । इति तद्वचनादेव ऋषयः सस्मितास्तदा ॥ २९ ॥ नोचुः परस्परं किंचित्तूष्णीमेवावतस्थिरे । जग्मुश्च बदरीं द्रष्टुं सर्वे वै शांतमानसाः ॥ ३० ॥ य इदं शृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा नरोत्तमान् । सर्वपापैः प्रमुच्येत विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्यासंवादे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

धीरज देते हुए यह वचन बोले। विष्णु बोले-हे अलक्ष्मी! तुम पीपलके मूलका आश्रय लेकर सदा स्थिर रहो ॥ २५ ॥ यह निश्चय मेरे अंशसे उत्पन्न है इससे मैंने तुमको यह बसनेके लिये स्थान दिया और प्रति वर्ष जो तुम्हारा पूजन करेंगे ॥ २६ ॥ उन्हींके यहां तुम्हारी छोटी बहिन अर्थात् लक्ष्मी स्थिर होकर रहेगी और स्त्रियों द्वारा नाना प्रकारकी भेंटे देकर सदा पूजने योग्य हो ॥२७॥ पुष्पगंध आदिसे जो तुम्हारा पूजन करेंगे उनपर लक्ष्मी प्रसन्न होगी। सूत बोले,-कृष्ण और सत्यभामाका तथा नारद और पृथुका संवाद मैंने वर्णन किया ॥२८॥ और जो पूछना चाहो वह मैं विस्तारसे कहूं, यह उनका वचन सुनते ही ऋषि मन्दहास्य करने लगे ॥२९॥ आपसमें कुछ न कहते हुये चुपचाप बैठे ही रहे। फिर शांतमन हो सबके सब बदरीवनके दर्शनको चले गये ॥३०॥ जो यह कथाको सुनेगा वा श्रेष्ठ मनुष्यको सुनायेगा वह सब पापसे छूट जायगा और विष्णुकी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होगा ॥३१॥ इति श्रीमत्पंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कार्त्तिकमाहात्म्ये भाषाटीकायां भा० बो० समाख्यायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

॥ इति पद्मपुराणोक्तं कार्तिकमासमाहत्म्यं ॥

शुभ सूचना

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारे बहुत से लोकप्रिय प्रकाशन जो वर्षों से अनुपलब्ध रहे हैं, अब छपकर तैयार हो रहे हैं। निम्नांकित ग्रंथ छपकर तैयार हैं।

सर्वसंग्रह - उज्जयिनी निवासी सांदीपनी कुलावतंस श्री दीनानाथाचार्य कृत, स्व. ज्योतिर्विभूषण पं. बच्चू झा कृत हिन्दी टीका सहित। प्रथम मिश्राध्याय में गणित, सिद्धांत, जन्म और वर्षपत्र सामुद्रिक, अंगस्फुरणादि शकुन है। दूसरे देह स्वराध्याय मं स्वरज्ञान, स्वरद्वारा प्रश्नोत्तर कथन स्वर बदलने का उपाय, छायासाधन, स्वर से मृत्युकाल का ज्ञान और दीर्घायु होने का उपयाय है। तीसरे कालस्वराध्याय में पंचस्वर (बाल, कुमार, युवा आदि) के द्वारा समान फलादेश लिखे है। चौथे रमलाध्याय मे सब प्रश्नों के उत्तर रमल द्वारा दिये है। पांचवे मुहूर्ताध्याय में मुहूर्तो का विस्तृत वर्णन है। मूल्य रुपये ८०

महर्षि वात्स्यायन प्रणींत **कामसूत्र** हिन्दी टीका सहित अब छपकर तैयार है जिसकी बहुत समय से प्रतीक्षा थी। पंडित यशोधर विरचित जयमंगला संस्कृत टीका का रिसर्च स्कॉलर पंडित माधवाचार्य कृत पुरुषार्थ प्रभा हिन्दी टीका व टिप्पणी से विभूषित संपूर्ण ग्रन्थ कपडे की सुन्दर दो मजबूत जिल्दों में है सुरक्षा के लिए दोनों भाग कार्ड बोर्ड के सुन्दर बाक्स में रखे गए है। दोनों भाग के सपूंर्ण सेट का मूल्य ४०० रुपये मात्र। इसके सर्वांग परिपूर्ण ज्ञान से दम्पतियों का जीवन सुखमय बनता है।

हरिवंशपुराण - हिन्दी टीका सहित माहात्म्य और संतान गोपाल मंत्रानुष्ठान समेत। इसके श्रवणादि से वंध्यत्व के अष्ट दोष निवारण होकर सुसन्ततिप्राप्त होती है। पत्राकार मूल्य ४०० ग्रंथ साइज सजिल्द दो भागों में ४७५

गर्गसंहिता - (उग्रसेन कृताश्वमेधादि दस खण्ड और माहात्म्य सहित) महामुनि गर्ग्मचार्य विरचित बारह हजार श्लोकों के इस ग्रंथ में भगवान् श्रीकृष्ण अवतार रहस्य से लेकर पश्चिमाअवस्था तक के पावन चरित्रों का वर्णन है। निर्गुण भक्तिभोग, भक्त माहात्म्य, भक्त्मुत्कर्ष, वेदनगर वर्णनान्तर्गत राग रागिनियों के परिवार का वर्णनादि अपूर्व विषयों से शोभित सरल, सुबोध, परिमार्जित हिन्दी टीका सहित पत्राकार २०० ग्रंथ साइज सजिल्द २५०

वाल्मीकीय रामायण - स्व. वि. वा. पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत अत्युत्तम पीयूषधारा नामक हिन्दी टीका सहित ग्लेज कागज बडे अक्षरों में पत्राकार ४५० ग्रंथ साइज सजिल्द दो भागो में ५२५

अष्टादश पुराण दर्पण - अर्थात् अठारह पुराणों का दर्पण के समान वर्णन। स्व. वि. वा. पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र निर्मित। इसमें वेद से पुराण विषय का वर्णन, सब पुराणों के अध्याय और उनकी कथा, पुराणों पर विचार शंका समाधान सहित लिखा है। पण्डितों के देखने योग्य है। मूल्य १५०

सिष्ट्म ऑफ आयुर्वेद - (इंगलिश में) पंजाब के आयुर्वेदज्ञ वैद्य रत्न पंडित शिव शर्माजी की दिव्यलेखनी की कृति। इसमें अन्य सब चिकित्साप्रणालियों की तुलना करते हुये आयुर्वेद की प्राचीनता, मौलिकता, उपयोगिता, लोकप्रियता तथा अन्य महत्व बडी विद्वत्ता से स्थापित किये गये हैं। सजिल्द मूल्य १००

बृहन्निघण्टु रत्नाकर - पं. दत्तराम चौबे द्वारा संकलित और हिन्दी टीका सहित। इसमें शरीराध्याय, यंत्राध्याय, शस्त्रविचाराणाध्याय, योगसूत्राध्याय, अष्टविध शस्त्रकर्माध्याय का वर्णन है। प्रथम भाग मूल्य १६०

बृहन्निघण्टु रत्नाकर - द्वितीय भाग इसमें क्षारणकविधि, अग्निकर्म, दोष धातु वृद्धि दोष वर्णन, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या और नाडी दर्पणादि वर्णन है। मूल्य १८०

निम्नांकित के नये संस्करण छपकर तैयार हैं।

आन्हिक कर्म सूत्रावली - मूलमात्र, शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यंदिन शाखावालों के परमोपयोगी, मूल्य ७०

धर्मशास्त्र संग्रह - बाबू साधुचरणदासजी संग्रहीत। ५९ स्मृतियों का सार सब प्रकार की धार्मिक व्यवस्थाओं मे लगाने में यह ग्रंथ अद्वितीय है। मूल्य ४०० मात्र

अष्टादश स्मृति - सर्वधर्म निरुपण मुक्ता। मूल्य २००।

होम्योपैथी हिन्दी में - लेखक : डॉ. मुकेश बत्रा - विश्वविख्यात होम्योपैथी विशेषज्ञ डॉ. मुकेश बत्रा की सुप्रसिध्द पुस्तक ''एवरीमेन्स गाइड टू होम्योपैथी'' का यह हिन्दी संस्करण प्रथम बार प्रकाशित हुआ है। होम्योपैथी एक ऐसी चिकित्साविधि है, जो अपनी हानिरहित औषधियों द्वारा रोगी का मानसिक व शारीरिक दोनों प्रकार से सस्ता इलाज करती है। प्रथम पुस्तक में गर्भावस्था से लेकर वृध्दावस्था तक की बीमारियों से बचने के उपाय व इलाज दिये गये हैं। ३५ से अधिक चित्रों द्वारा स्वास्थ बनाये रखने के लिये व्यायाम, नियम व रोंगो की विस्तृत जानकारी से यह एक पुस्तक ही अपने समस्त परिवार के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पृष्ठ संख्या ३२० पेपर बैक एडीशन मूल्य ६० मात्र

निम्नांकित ग्रंथ मुद्रणार्थ मुद्रणालय में जा चुके हैं, शीघ्र ही छप जायेंगे।

सुश्रुतसंहिता - चारों भाग संपूर्ण सेट। स्व. पं. मुरलीधरजी शर्मा राजवैद्य कृत सान्वय, सटिप्पण, सपरिशिष्ट हिन्दी टीका सहित। सूत्रस्थान, निदान शरीर स्थान, चिकित्सास्थान, कल्पनाथ, उत्तरतंत्र संपूर्ण। इसमें संपूर्ण रोगोंका निदान, लक्षण और औषधियों के प्रचार वा प्रत्येक रोग पर क्वाथ, चूर्ण, रस और घी आदि से अच्छी प्रकार से चिकित्सा वर्णित है। सम्पूर्ण सेट ५००

बृहन्निघण्टु रत्नाकर - तृतीय भाग। इसमें विविध रोगोंकी चिकित्सा का वर्णन है। मूल्य २००।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर - चतुर्थ भाग। चिकित्साखंण्ड। मूल्य १२५।

(पंचम भाग में रोगों का कर्म कर्म विपाक व षष्ठ भाग में रोगों का चिकित्सा भाग हैं। ये दोनों भाग पुराने एडीशन के तैयार हैं। सप्तम अष्टम भाग अर्थात् शालीग्राम निघण्टुभूषण अनेक देश देशान्तरीय संस्कृत, हिन्दी, बंगला, मराठी, गौर्जरी, द्राविडी, तैलंगी, औत्कली, इंग्लिश, फारसी, अरबी आदि भाषाओं में सर्व औषधियों के नाम और गुणों का वर्णन औषधियों के चित्रों सहित। यह स्व. लाला शालग्रामजी द्वारा संकलित हैं। यह अभी दो रंगों में छपकर तैयार है। पंचम भाग का मूल्य १५० व षष्ठ भाग १०० व सप्तम अष्टम भाग अर्थात् शालीग्राम निघण्टु भूषण का मूल्य २५० मात्र

वंगसेन - भिषक शिरोमणि लाला शालग्रामजीकृत हिन्दी टीका सहित वैद्यक संबंधी समस्त विषयों के सिवाय यह ग्रंथ चिकित्सा में प्रधान है। मूल्य ५००

अष्टांगहृदय - (वाग्भट्ट) हिन्दी टीका सहित। इस वाग्भट्ट कृत मूल की ''शिवदीपिका नामक हिन्दी टीका भूतपूर्व पटियाला राज्य के प्रधान चिकित्सक वैद्यराज स्व. पं. रामप्रसादजी राजवैद्य के सुपूत्र वैद्यरत्न स्व. पं. शिवशर्माजी ने ऐसी सरल भाषा बनाई है कि जो सर्व साधारण के लिये परमोपयोगी है। मूल्य ३५०।

हमारे यहां से वैदिक, वेदान्त, योग, सांख्य, धर्म शास्त्र, कर्मकाण्ड, पुराणोपपुराण, व्रतकथा माहाम्य, ज्योतिष, आयुर्वेद, काव्य-नाटक, मंत्रशास्त्र, स्तोत्र, कबीरपंथी, आदि विविध विषयों के हजारों ग्रंथ प्रकाशीत होते हैं। विस्तृत जानकारी के लिये हमारा बृहत सूचीपत्र मुफ्त मंगवा कर देखिये।

हमारी सभी पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, खेतवाडी, बम्बई - ४००००४. दूरभाष/फैक्स - ३८५७४५६

२) खेमराज श्रीकृष्णदास, ६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट, पुणे - ४११०१३ दूरभाष/फैक्स - ६७१०२५

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस व बुकडिपो, अहिल्याबाई चौक, कल्याण जि. ठाणे (महाराष्ट्र) दूरभाष - २३३३४

४) खेमराज श्रीकृष्णदास चौक, वाराणसी (उ.प्र.) दूरभाष - ३००७८

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर, मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डिंग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष - ०२५१-२२०१०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS